श्री महामुनि क्षीरसागर प्रणीत

श्रावकचर्य्या

मूल, सार्थ और ६२ कथायें

•

प्रकाशक :

श्री म... र जैन ग्रन्थमाला

...पुर)

...२४९७

मूल्य रु० १ ५०

सदाचार की महिमा

धन के गये न कुछ गया, स्वास्थ्य गये कुछ जाय।
सदाचार के नष्ट हो, सर्वसु ही नश जाय॥

श्री महामुनि क्षीरसागर प्रणीत

श्रावकचर्य्या

मूल, सार्थ और ६२ कथायें

प्रकाशक—

श्री महामुनि क्षीरसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थ माला

माधोगंज, लश्कर (गवालियर)

पंचमावृत्ति २०००

रक्षा बंधन वीर निर्वाण संवत् २४९७

मूल्य १·५०
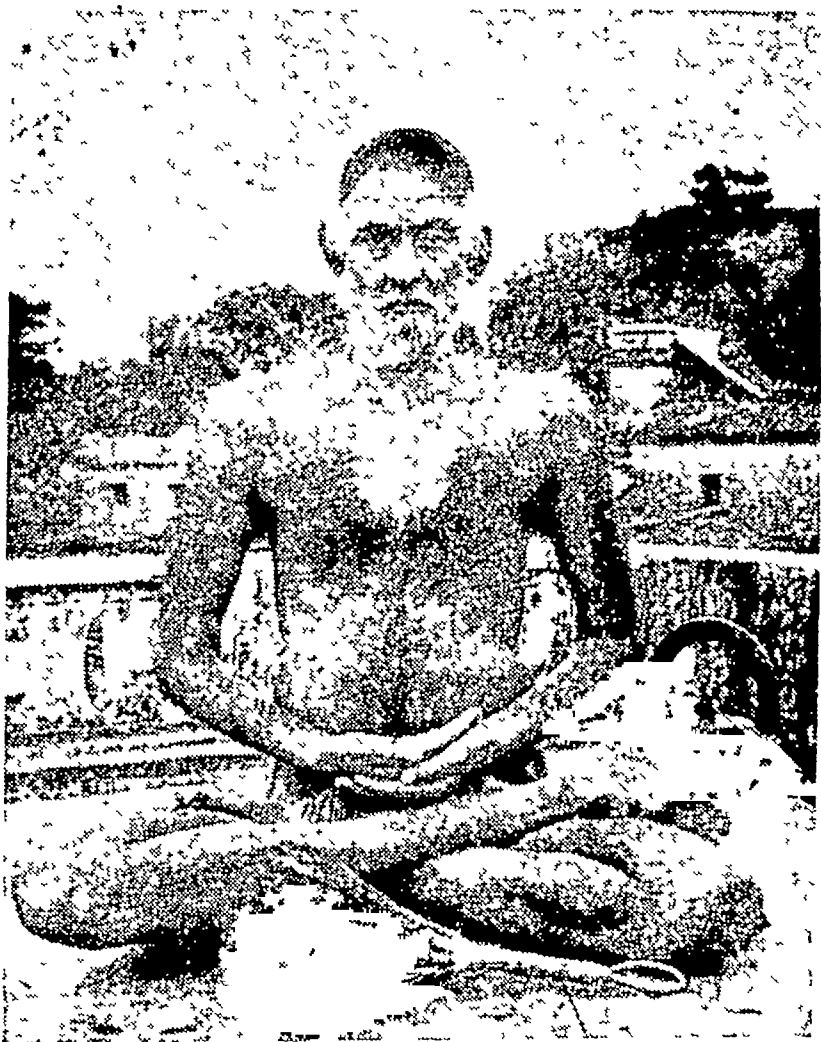
अनेक ग्रन्थों के कर्त्ता और अनेक अतिशय [स्वयंबोधित, स्वयदीक्षित, परमअध्यात्मयोगी, विद्यमानभोगपरिहारी, दम्पतिमहाव्रतधारी, एकाविहारी, जिनवरलिंगधारी, महासाहित्यिक, महावादी, महाकवि परमाचार्य, चारित्रशिरोमणि, सिद्धान्तचक्रवर्ती, श्रुतकेवली-तुल्यपद] के धारक परमपूज्य श्री १००८ महामुनि

क्षीरसागर जी महाराज

श्री १००८ महामुनि चीरसागर जी महाराज का जीवन-वृत

आपका जन्म बरैया वैश्य जाति के काडोर गोत्र मे सौ० द्रोपदी बहिन के पश्चात् श्रावण कृष्णा ३ स० १९६० मे रिठौरा ग्राम जिला मुरैना (गवालियर) मे हुआ था। आपका पूर्व नाम बोहरे मोतीलाल जी था। पिता का नाम बोहरे पन्नालाल जी तथा माता का नाम कौशल्या बाई था। आपकी शिक्षा मुरैना जैन विद्यालय मे केवल चौथी कक्षा तक हुई और ११ वर्ष की अवस्था मे आपका विवाह साह नन्दरामजी, मोहना (गवालियर) की सुपुत्री मथुरादे के साथ हो गया। लगभग ४० वर्ष की अवस्था तक आप पूर्व धार्मिक मर्यादा सहित गृहस्थ-जीवन करते रहे। आपका मुख्य व्यवसाय कपडे की दूकान तथा साहूकारी था। चिरजीलाल जी, सुनेहरीलाल जी, श्यामलाल जी, शकरलाल जी तथा अमृतलाल जी आपके पॉच सुपुत्र है जो इस समय गवालियर में कपडे का व्यवसाय कर रहे है। विद्यालय मे शिक्षा प्राप्त करते समय ही आपके हृदय मे विशेष धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय, दर्शन, पूजन आदि आपके दैनिक नियम वन गये। बाल्यकाल से ही आपकी प्रवृत्ति सप्त व्यसनो से सर्वथा विमुख रही। प्रत्येक शास्त्र की समाप्ति पर आप कुछ न कुछ नियम अवश्य लेते थे। एक वार आपने एक महान् नियम लिया कि पुत्र-बधू के आते ही मै गृह त्याग दूगा। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी आपका हृदय सदैव ससार से विरक्त रहा। सासारिक प्रलोभन आपकी पवित्र आत्मा को जरा भी विचलित न कर सके। दो पुत्रो की शादी होने के पश्चात् उनकी छोटी अवस्था के कारण आप ३ वर्ष तक ७ वी प्रतिमा धारण कर घर पर ही रहे। अन्त मे ससार की अनित्यता को देखकर अपने आत्म कल्याण की दृष्टि से आपने अपनी धर्मपत्नी सहित क्षुल्लक अवस्था धारण की। इससे पूर्व आपने धर्मपत्नी सहित १ वर्ष तक प्राय सभी तीर्थो की यात्रा की। आपकी धर्मपत्नी पद्मश्री क्षुल्लिका के नाम से प्रख्यात है। ३ वर्ष

तक क्षुल्लक अवस्था में रहने के पश्चात् स० २००७ मे भोपाल की पच कल्याणक प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर तप कल्याणक के दिन विशाल जन समुदाय की हर्ष ध्वनि के बीच आपने मुनिव्रत धारण किया। सॉसारिक सुखो के समस्त साधनो के होते हुए भी, पारिवारिक एवं आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हुए, उनको ठुकराकर आपने वर्तमान काल मे एक महान् शिक्षाप्रद आदर्श उपस्थित किया है।

अध्ययन की ओर आरम्भ से ही आपकी विशेष रुचि थी। विद्यालय छोड़ने के वाद भी आपने धार्मिक अध्ययन जारी रखा और समयसार, प्रवचनसार आदि जैसे महान् ग्रथो का अध्ययन किया। अध्यात्मवाणी आदि जैसी महत्वपूर्ण ग्रन्थो की रचना आपके इसी अध्ययन और मनन का परिणाम है। सयम के साथ आध्यात्मिक विषय का इतना ज्ञान आपकी एक महान विशेषता है। धार्मिक एव आध्यात्मिक विषय का अपूर्व ज्ञान होने के साथ-साथ आपका स्वभाव भी अत्यन्त शान्त, सरल एवं गम्भीर है। भाषण शैली अत्यन्त मधुर एव प्रभावशाली है। आपका व्यक्तित्व इतना महान् है कि दर्शन करते ही हृदय मे अपूर्व शान्ति का अनुभव होने लगता है। इससे पूर्व आपने लगभग २००-२५० आध्यामिक एव महत्वपूर्ण दोहो की रचना की है जिसमे अनेक जटिल विपयो का निर्णय किया है जो अभी तक अप्रकाशित है।

आप कभी भी अपने श्रोताओं को किसी व्रत को ग्रहण करने अथवा कुछ दान करने के लिये विवश नही करते। किन्तु आपका उपदेश इतना हृदयस्पर्शी होता है कि श्रोतागण स्वयमेव ही शक्ति अनुसार व्रत ग्रहण किये विना नही रहते। आप लौकिक, धार्मिक एव समाजिक झझटो से सर्वथा विमुख रहते है। आपका अधिकाश समय अध्ययन और मनन मे ही व्यतीत होता है। समाज को आप जैसे मुनिराज पर महान गर्व है।

शांतिमूर्ति, विवेकशीला श्री १०५

पद्मश्री अर्जिका जी

भूमिका

(ग्रन्थकार)

इस ग्रन्थ मे यथा नाम तथा वर्णन है जो कि चार अधिकारो में बटा हुआ है और प्रत्येक व्रत की पोषक १-१ कथा है।

दर्शनप्रतिमाधिकार—इस अधिकार में दर्शनप्रतिमा का वर्णन है इस प्रतिमा में मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का त्याग है इस त्याग से अयोग्यस्थूल हिसादिक पाँच पाप सर्वथा छूट जाते है जो कि व्यर्थ और लोकनिद्य है। इनके त्याग से सच्चे देव, शास्त्र और गुरु पर सच्चा श्रद्धान (व्यवहार सम्यक्दर्शन) होता है। उसको ही दर्शन प्रतिमा कहते हैं।

व्रतप्रतिमाधिकार—इस अधिकार मे व्रतप्रतिमा का वर्णन है। इस प्रतिमा मे ५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत और ४ शिक्षा व्रतो का ग्रहण है इनके ग्रहण से न्यायजनित भोगोपभोग भी परिमित हो जाते है जिससे अणुव्रत का अश प्रारम्भ हो जाता है।

पूजनादिप्रतिमाधिकार—इस अधिकार मे शेप प्रतिमाओ का वर्णन है। इन प्रतिमाओ में यथानाम तथाव्रत ग्रहण होता है जिनके ग्रहण से उस श्रावक की चर्य्या एक मुनि जैसी बन जाती है।

समाधिमरणाधिकार—इस अधिकार मे समाधिमरण का वर्णन है जिसमे व्यवहार क्षय से वाह्य और आभ्यातर समाधिमरण ग्रहण करने की विधि स्पष्ट की गई है।

इस ग्रन्थ के लिखने मे पूर्वापरविरोधनिराकरण का, विपयानुक्रम यथास्थान पर रखने का, जो बात जहाँ होना चाहिये वहाँ रखने का और विषय स्पष्ट करने का अधिक प्रयास किया गया है।

॥ विषय सूची ॥

आवश्यक समाधान

सत्य में निंदा कैसी

सत्य वचन निंदा और अभिमान से भरा नहीं होता यदि होवे तो मेरे से शेष तीर्थंकरों के समवशरणादि न्यून होंगे ऐसे श्री आदीस्वर भगवान के वचन निंदा और अभिमान से भरे ठहरे इसलिये सत्य खोजक की निंदा नही करना चाहिए ।

सत्य खोजक कौन

जिस प्रकार अभव्य और भव्य मिथ्यादृष्टि तीर्थंकरों को मायाजालिया बताकर आत्मलाभ नही लेते उस प्रकार भव्य और सम्यग्दृष्टि नही करते अपितु औरों को भी क्षीरश्रुत द्वारा आत्मलाभ कराकर धर्म और सत्य की महिमा बढाते है ।

ज्ञानी अज्ञानी की दशा

जिस प्रकार अग्नि जलाये विना केवल गर्म जल से किसी का घर जलाने का कार्य मूर्ख करते है उस प्रकार का मिथ्या कार्य ज्ञानी नही करते क्योंकि ज्ञानी के सर्व कार्य ज्ञान पूर्वक होते है इसलिए मुनि निंदा न कर ज्ञानी बनना चाहिए ।

दोहा—सुवरण के भूषण बने, सुवरण जैसा रंग ।
लोहे के भूषण बने, लोहा जैसा अंग ॥

सु भी ता

जिस प्रकार बालक पके फोड़ा (श्रुत अशुद्धि) को नही फोड़ने देता उस प्रकार तरुण [ज्ञानी] नही करता अपितु डाक्टर (क्षीर श्रमण) को सुभीता देता है अर्थात् धर्मात्माओं को सहयोग देना चाहिये ।

ध्यान देने योग्य

जिस प्रकार कर्णफूल को काँच की और परोक्ष को प्रमाण की आवश्यकता होती है उस प्रकार हथकंकण को काँच की और प्रत्यक्ष अशद्धियो को प्रमाण की आवश्यकता नही होती ।

किन्तु

पुरुष परीक्षा नहीं करें, वचन करें प्रमाण ।
देखो या कलिकाल में, भोले जीव महान ॥
भ्रष्ट कहें सो धर्म है, अधिक राय सो भूप ।
देखो या कलिकाल में, नख शिख उलटा रूप ॥

किन्तु स्वार्थ बावरी दुनियाँ

दोहा—अवगुण गुण उनके लगे, जिनसे स्वारथ होय ।
गुण अवगुण उनके लगे, जिनसे स्वारथ खोय ॥

अन्त मे

बिन समझे सो समझसी, समझे और दृढ़ांहिं ।
ज्ञान गांठि जिनके लगी, ते पढ़ि रोष मचाहिं ॥

जैनी वढती के इच्छुक

जैन जगत जैनी चहें, युगति न जाने कोय ।
तज स्वधर्म, वढ़ती चहें, कहो कहां से होय ॥

फिर क्या करे

खान पान भूषण वसन, उचित करो व्यवहार ।
लोग निरख तुम्हारी तरफ जैन धर्म लें धार ॥

समकित लहे न कौन

	निम्न व्यक्ति		निम्न कहावतों के अनुयायी व्यक्ति
१	पक्षपाती	१	मरे पूत की बड़ी आँखें
२	भेड़िया धसानी	२	जैसी हवा तैसे कंकड़
३	बावा वाक्य प्रमाणी	३	चला चलन दो ढला चला
४	प्रसिद्ध उपासक	४	नानी के आगे ननिआवरे की खबरें
५	वामी पूजक	५	पंचन भीतर रहिए, प्राण जाहि साँची नहि कहिए।
६	अंधश्रद्धालु		इत्यादि।
७	स्वार्थचतुर		
८	व्यवहार कुशल		
९	कूप मेढक		
१०	हिटलर शाही		
११	प्रवाही		
१२	जोंकानुयायी		
१३	सामान्यवाची		
१४	मधुरग्राही		
१५	वहालीराम		
१६	लकीर के फकीर		
१७	बन्दर मूठीमतानुयायी		
१८	सुधारक		

दोहा-देव शास्त्र गुरु सत असत, अरि प्रिय क्रोधा क्रोध।
ज्ञान चरणदृग सत असत, समकित बिना न बोध ॥

व्रती
मुनि
श्रावक
अव्रती
दर्शन प्रतिमा
देशव्रती
व्रत
पूजन
स्वाध्याय
सचित त्याग
प्रतिक्रमण
ब्रह्मचर्य
आरंभत्याग
परिग्रह त्याग
अनुमतत्याग
भिक्षाहार
क्षुल्लक
ऐलक
अणुव्रत ५
गुणव्रत ३
शिक्षाव्रत ४
दिग्व्रत १
अनर्थदड व्रत २
भोगोपभोगपरिमाण व्रत ३
देशव्रत १
सामायिक २
उपवास
अहिंसा १
सत्य २
अचौर्य ३
ब्रह्मचार्य ४
परिग्रह परिमाण ५

दोहा :—धर्म मूल दर्शन कहा, शिष्यो को भगवान। इससे दर्शन हीन को, मत वन्दो मुनि कान ॥

अर्थ—स्वार्थ को तजो और दर्शन हीन (मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य सेवने वाले) को मति वन्दो।

सम्यक दर्शन के २५ दोष

सम्यक् दर्शन के २५ दोष

- शंका दोष ८
  - शंका १
  - वांछा २
  - ग्लानि ३
  - मूढ दृष्टि ४
  - अनुपगूहन ५
  - अस्थितिकरण ६
  - अवात्सल्य ७
  - अप्रभावना ८
- मद ८
  - सुन्दर शरीर ९
  - ऊँच जाति १०
  - ऊँच कुल ११
  - विपुलधन १२
  - निजबल १३
  - जनपूजा १४
  - उग्रतप १५
  - तत्वज्ञान १६
- मूढ़ता ३
  - लोक १७
  - देव १८
  - गुरु १९
- अनायतन ६
  - कुगुरु २०
  - कुदेव २१
  - कुधर्म २२
  - कुगुरु सेवक २३
  - कुदेव सेवक २४
  - कुधर्म सेवक २५

आयतन—दर्पण

दोहा—कुगुरु कुदेव कुशास्त्र अरु, इनके पूजक तीन ।
अनायतन इनको कहे, अपर आयतन चीन ॥

भक्ष्यमर्यादा दर्पण

क्र० सं०	नाम वस्तु	मर्यादा		
		वर्षा	ग्रीष्म	शीत
१	घी, तेल	१ वर्ष	१ वर्ष	१ वर्ष
२	दही, छाछ और गर्म दूध	उस दिन	उस दिन	उस दिन
३	छना जल और दूध	अन्त-	मुहूर्त्त	तक
४	खौला जल	८ पहर	८ पहर	८ पहर
५	कुटा मसाला	७ दिन	१५ दिन	३० दिन
६	बूरा, बतासा, मिश्री	,,	,,	,,
७	आटा, मैदा,	३ दिन	५ दिन	७ दिन
८	रवा दरिया			
९	मगद के लड्डू (बिना पानी के)	,,	,,	,,
१०	कच्चा भोजन (पानी से पका)	२ पहर	२ पहर	२ पहर
११	पक्का भोजन (घी, तेल में पका)	उस दिन	उस दिन	उस दिन
१२	पकवान (चासनी चढी)	२ दिन	२ दिन	२ दिन
१३	नमक पिसा	अन्त	मुहूर्त्त-	तक
१४	भोजन मिला नमक	उस-	भोजन-	समान
१५	भक्ष्य वस्तु की भस्म	सदा	भक्ष्य	है

जीव स्वरूप दर्पण

नाम		उदय चिन्ह	त्यागात्याग चिन्ह	वस्त्रावस्त्र चिन्ह
मिथ्या दृष्टि		अनंतानुवन्धी का तीव्र उदय	मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का सेवन	म्लेच्छाम्बर
जघन्य पाक्षिक	सम्यग्दृष्टि	अनंतानुवन्धी का मन्द उदय	अष्ट मूल गुण का पालन	आर्याम्बर
उत्कृष्ट पाक्षिक	सम्यग्दृष्टि	अप्रत्याख्यान का उदय	अन्याय, अभक्ष्य और मिथ्यात्व का त्याग	,, ,,
जघन्य नैष्ठिक	देश व्रती	प्रत्याख्यान का तीव्र उदय	दूसरी प्रतिमा का पालन	,, ,,
उत्कृष्ट नैष्ठिक	देश व्रती	प्रत्याख्यान का तीव्रतर उदय	छटवी प्रतिमा का पालन	,, ,,
जघन्य साधक	देश व्रती	प्रत्याखान का मन्द उदय	सातवी प्रतिमा का पालन	शुक्लाम्बर
उत्कृष्ट साधक	देश व्रती	प्रत्याख्यान का मन्दतर उदय	ग्यारहवी प्रतिमा का पालन	,, ,,
मुनि	महा—व्रती	संज्वलन का तीव्र उदय	छटवें गुणस्थान के आचरण	दिगम्बर
महामुनि	महा—व्रती	संज्वलन का मन्द उदय	सातवें गुणस्थान के आचरण	,, ,,

नोट —उदय केवल ज्ञान गम्य है। शेष इन्द्रिय गम्य है।

सूतक दर्पण

क्र० न०	सूतक	अवधि
१	जन्म का तीन पीढी को	१० दिन
२	” चौथी ”	५ ”
३	” शेष ”	एक-एक दिन कम
४	मरण का तीन पीढी को	१२ दिन
५	” चौथी ”	६ ”
६	” शेष ”	एक-एक दिन कम
७	परदेश मे खबर मिलने पर	शेष दिन का
८	जातिच्युत	+
९	घरविरक्त	+
१०	एक वर्ष तक के बालक का मरण	१ दिन
११	आठ वर्ष तक के बालक का मरण	३ दिन
१२	अपने घर पुत्री आदि का प्रसव अथवा मरण	३ दिन
१३	अपने घर पर पशु का प्रसव अथवा मरण	१ दिन
१४	पाँच मासादि का गर्भक्षय कुटब को	५ आदि दिन
१५	जननी स्त्री को घरार्थ १॥ मास, दानार्थ	३ महीना तक
१६	गर्भवती को घरार्थ ५ मास से दानार्थ	प्रथम मास से
१७	रजस्वला स्त्री को	५ दिन
१८	दाह क्रिया मे जाने वाले को	१ ,,
१९	बाल बनवाने वाले को	१ ,,
२०	कुलटा स्त्री को	सदा

पातक दर्पण

क्र० न०	पातक	अवधि
१	परनारी हरण का	प्रमुख न्यायाधीन
२	कुटब को अपघात का	,,
३	मनुष्य घात का चौपाये पशु के घात का	,,

भक्ष्याभक्ष्य दर्पण

क्रमा०	नाम पदार्थ	हरे	सूखे	उदाहरण
१	कंद देर मे सूखने वाले	अभक्ष्य	अभक्ष्य	आलू, अरवी
२	कंद जल्दी सूखने वाले	अभक्ष्य	भक्ष्य	हल्दी, अदरख
३	मूल, जो सीधा पैदा हो	अभक्ष्य	अभक्ष्य	मूली, गाजर
४	मूल, जो तिरछा पैदा हो	अभक्ष्य	भक्ष्य	श्वेतमूसली आदि
५	पच फली	अभक्ष्य	अभक्ष्य	बड, पीपल आदि
६	बहु बीजा	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अरंडककडी(पपीता)
७	बेंगन	अभक्ष्य	अभक्ष्य	भटा, टमाटर
८	बेर	अभक्ष्य	अभक्ष्य	बेरी, झरबेरी
९	बड़ फल	अभक्ष्य	अभक्ष्य	काशीफल, कुमेडा
१०	दुग्ध फल	अभक्ष्य	अभक्ष्य	खिन्नी
११	चेंपदार फल	अभक्ष्य	भक्ष्य	भिन्डी
१२	छिलका गलन फल	अभक्ष्य	भक्ष्य	जामुन
१३	१–बड़े पत्र २–दुग्ध पत्र ३–दलदार पत्र ४–चेंपदार पत्र ५–रोम पत्र ६–खार पत्र	अभक्ष्य	भक्ष्य	१ केला पत्र २ आक पत्र ३ पान ४ गवार पाठा ५ पोदीना ६ चना की पत्ती
१४	तुच्छ फल तुच्छ पत्र	अभक्ष्य	भक्ष्य	
१५	अजान फल अजान पत्र	अभक्ष्य	अभक्ष्य	
१६	वर्षा ऋतु मे सर्व पत्र	अभक्ष्य	भक्ष्य	
१७	सब प्रकार के फूल	अभक्ष्य	भक्ष्य	केशर, लोंग
१८	सब बीज, शेष फल और पत्ता	भक्ष्य	भक्ष्य	

नोट–इसके अतिरिक्त ओला, पाला, मक्खन, विष, मिट्टी, अचार, कच्चे पक्के दही छाछ मे द्विदल अनाज, चलित रस, जलेबी और मधु अभक्ष्य हैं। सेंधा नमक को छोडकर शेष नमक अभक्ष्य है किन्तु शुद्धता पूर्वक कुआ के खारे जल को औटाकर बनाया जावे तो लिया जा सकता है।

शेष यथायोग्य समझना चाहिये।

जवाहरलाल
लालसिह
श्रीपति
पचमलाल
हीरालाल
पतिराम
विहारोलाल
पन्नालाल
रामलाल
करणसिह
मोतीलाल
(महामुनि क्षीर)
चिरोजीलाल
श्यामलाल
अमृतलाल
अशोककुमार
परसोत्तमदास
सुनेहरीलाल
शकरलाल
सुरेशकुमार
धरणेन्द्रकुमार
ज्ञानचन्द्र
राजकुमार
मुनीद्रकुमार
सुभागचन्द्र
शिखरचन्द्र
जयकुमार
श्रीनदनलाल
रामवाबू
वीरेन्द्रकुमार
ओमप्रकाश
जिनेन्द्रकुमार
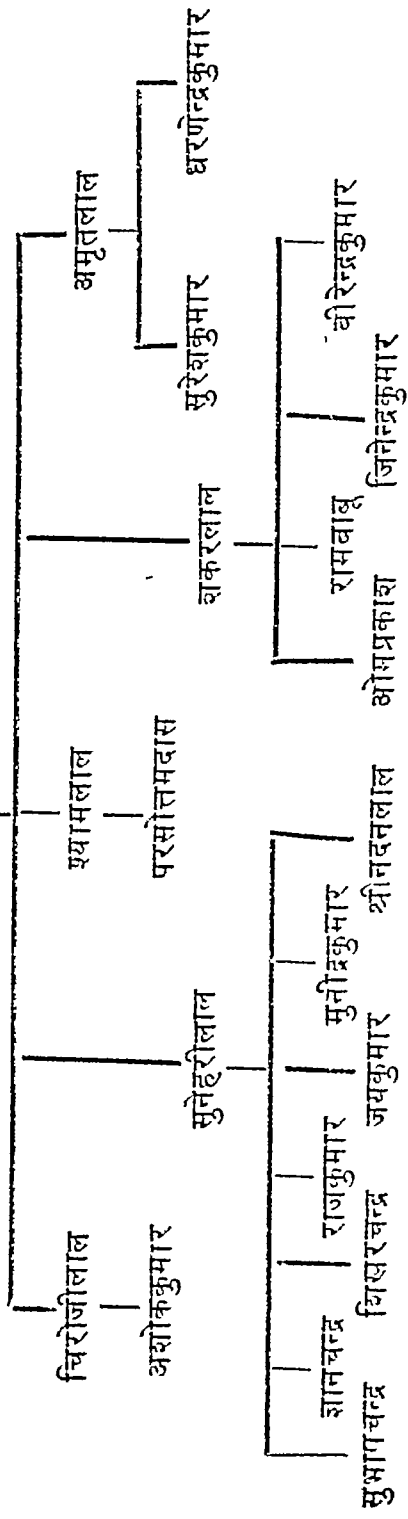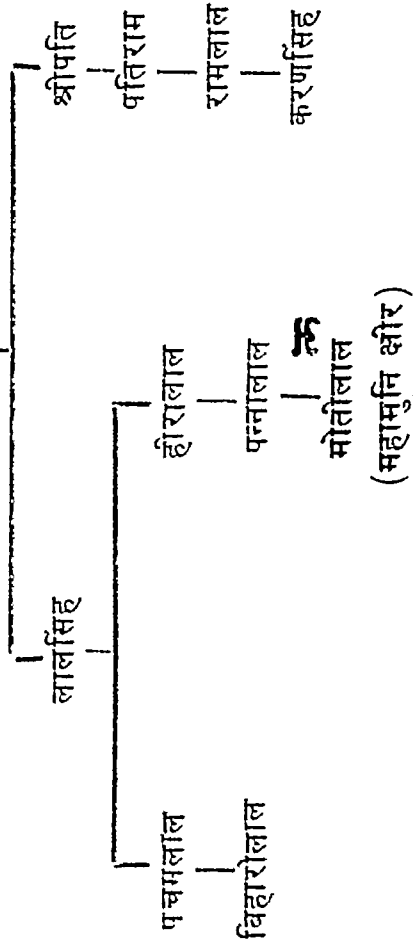
चौमासा

(महामुनि क्षीर)

ब्रह्मचारी अवस्था

स्थान	समत्
घर	१९९९
घर	२०००
घर	२००१
दक्षिणयात्रा	२००२
माधोगज-लश्कर	२००३

क्षुल्लक अवस्था

ललितपुर	२००४
इन्दोर	२००५
विदिशा	२००६

मुनि अवस्था

भोपाल	२००७
अशोक नगर	२००८
झाँसी सदर	२००९
चदेरी	२०१०
लश्कर	२०११
आगरा	२०१२
सिरसागज-मैनपुरी	२०१३
हाथरस	२०१४
दिल्ली	२०१५
बडौत-मेरठ	२०१६
देहरादून	२०१७
इटावा	२०१८
पन्ना	२०१९
कोडरमा बिहार	२०२०
झाँसी	२०२१
गवालियर	२०२२
मुरार-गवा०	२०२३
बबीना झाँसी	२०२४
अशोक नगर	२०२५
बडा नयागाँम जि० बूदी	२०२६

पाप भेद

हिंसा	असत्य	चोरी	कुशील	परिग्रह
संकल्पी	प्राणहरवच	परधनग्रहण	परनारीभोग	अन्यायसंचय
विरोधी	दुखकरवच	मिलाधनग्रहण	निजनारीभोग	करसंचय
उद्योगी	उद्योगवच	व्यापारधनग्रहण	वचनभोग	व्यापारसंचय
आरम्भी	आरम्भवच	दानधनग्रहण	स्मरणभोग	दानसंचय

जन्म कर्म के आश्रय गुण

	जन्म			विद्यमान कर्म	
	द्विज	ऊ शू	नी शूद्र	द्विज	शूद्र
सम्यक्त्व	,,	,,	,,	,,	+
५ अणुव्रत	,,	,,	,,	,,	+
७ प्रतिमातक	,,	,,	+	,,	+
क्षुल्लक तक	,,	,,	+	समर्थक	+
ऐलक	,,	+	+	,,	+

मुख्य द्विज कर्म

भक्ष्य अशन चौका विषें, व्याहे सुता कुलीन ।
रजस्वला छूए न कुछ, मुख्य कर्म द्विज तीन ।।

स्याद्वाद

हाँ में ना का वास है, ना में हाँ का वास ।
हाँ ना कबहूँ भिन्न है, स्यादवाद सो खास ॥१॥
स्यादवाद उसको कहें, जो स्वरूप सनमुक्ख ।
हठविवाद उसको कहें, जो स्वरूप उनमुक्ख ॥२॥
चक्र सुदर्शन सारिखा, स्यादवाद को देख ।
वह न किसी से बन सके, जैसा कीचड मेख ॥३॥
स्यादवाद शैली अजब, जिनवर मत के मांहि ।
हाँ करके खंडन करे, ना कर खंडे नांहि ॥४॥

हिंसाभेद और स्थान

संकल्पी रु विरोधनी, उद्योगी आरम्भ ।
चार भेद हिंसा कहे, आगम के प्रारम्भ ॥१॥
समकित रोधन प्रथम है, द्वितीय अणुव्रत मान ।
उद्योगी मुनि व्रत हरे, चौथी केवल ज्ञान ॥२॥
मिथ्यात्वी के चार है, सम्यक्ती के तीन ।
देश-व्रती के दो रहें, आगे एक मलीन ॥३॥
पहिली हिंसा साथ सब, दूजी तीन बखान ।
उद्योगी आरम्भ मिलि, चौथी न्यारी जान ॥४॥

* श्री वीतरागाय नम *

श्री महामुनि क्षीरसागर प्रणीत

वस्तु स्थिति

(सामान्य विशेषात्मक)

जब कोई सामान्य पढि, करता दुरउपयोग।
तब विशेष रक्षा करे, जैसे औषध रोग॥

ये ७ उदाहरण हैं—

सामान्य जिनोपदेश

१—अपने समान सबको समझो।

विशेष जिनोपदेश

सब मैत्री गुणिजन भगति, दुखी दया शठ संग।
साम्य भाव मेरे करो, हे जिन करुणा अंग॥

सामान्य जिनोपदेश

२—मंदिर सब लोगों का है।

जिनोपदेश विशेष

द्विज न रोक अभिषेक जिन, द्विजनि न पूजा रोक।
शूद्र न दर्शन रोक है, नीच शिखर की थोक॥

सामान्य जिनोपदेश

३—जैनधर्म सब धारण कर सकते हैं।

विशेष जिनोपदेश

भेष दिगम्बर द्विज धरें, द्विजनि अर्जिका भेष।
ऊँच शूद्र क्षुल्लक बने, नीच अणुव्रत लेश॥

सामान्य जिनोपदेश

४—धर्म का मूल दर्शन है।

विशेष जिनोपदेश

केवल चारित धर्म है, धर्म वही समभाव।
मोह क्षोभ से रहित ही, समरस जीव स्वभाव॥

सामान्य जिनोपदेश

५—जड़क्रिया में धर्म नहीं है।

विशेष जिनोपदेश

जड़ क्रिया में धर्म नहिं, नहीं पुण्य अघ कर्म।
भाव क्रिया में पुण्य अघ, ज्ञान क्रिया में धर्म॥

सामान्य जिनोपदेश

६—निमित्त कुछ नहीं करता।

विशेष जिनोपदेश

मुक्ति न होय निमित्त से, चहुँगति निमितधीन।
अशुभ निमित से अशुभ गति, शुभ से शुभ गति चीन॥

सामान्य जिनोपदेश

७—शूद्र जल का त्याग।

विशेष जिनोपदेश

व्रती न पीवे शूद्र जल, अपर न पीवे नीच।
इनके परशन मात्र से, शुद्धि करो जल सींच॥

इत्यादि

कुछ सिद्धान्त

शुद्ध निश्चयनय से अपनी २ आत्मा अपने २ लिये देव, शास्त्र और गुरु है तो भी अशुद्ध निश्चयनय से मुनि को साधक अवस्था मे अरहतसिद्ध देव है भावश्रुत जिनवानी है और भावलिगी मुनि गुरु है व्यवहारनय से श्रावक के लिये अपने २ क्षेत्र के तीर्थकर को मूर्ति देव है द्रव्यश्रुत जिनवानी है और द्रव्यलिगी मुनि गुरु है तथा अशुद्ध व्यवहारनय से जिसका जो मन माने सो देव, शास्त्र और गुरु है जिसमे जो निश्चय की दृष्टि रख व्यवहार पालन करता है उसके मोक्षमार्ग बनता है।

जेसी देवमूर्ति, लिपि और गुरु मान्यता होती है तैसे देव, शास्त्र और गुरु की सिद्धि होती है।

गणधर, श्रुतकेवली, अंगधारी, अध्यात्मयोगी, आचार्य, उपाध्याय और सामान्यमुनि ये उत्तरोत्तर बडेपद है इनमे छोटेपद वाले बडो को नमोस्तु करते है बड़ेपद वाले उनको धर्म वृद्धि कहते हैं और सामान्य मुनि परस्पर मे नमोस्तु करते है किन्तु जिनका दीक्षा काल १ क्षण भी कम है वे प्रथम नमोस्तु करते है।

चतुर विधि सघ दो प्रकार का होता है —साधु और साधुनी जिसमे आचार्य, पाठक, सामान्य मुनि और उत्कृष्ट श्रावक हो वह साधु चतुरविधि सघ है तथा गणिनी, पाठिका, सामान्य अर्जिका और उत्कृष्ठिश्राविका हो वह साधुनी चतुरविधि सघ है ये दोनो सघ केवली भगवान के स्थान अथवा विहार मे साथ होते है अन्यथा पृथक २ विहार करते है और दीक्षा-शिक्षा अपने २ होती है यदि मुनि वदना अथवा शका-समाधान की आवश्यकता हो तो सूर्य के उदय और दो के साथ हो सकती है।

मुनि की सेवा मे रहकर ऐलक, क्षुल्लक और घर विरक्त प्रतिमा धारियो का उत्तम धर्म साधन होता है तथा अर्जिका (ऐलिका) की सेवा मे रहकर क्षुल्लिका और घर विरक्तप्रतिमाधारिनियो का उत्तमधर्मसाधन होता है इन दोनो सघो की आहार और विहारादि की पृथक २ व्यवस्था घर रत श्रावक और श्राविकाये करती है ।

दिगम्बर मुनि पखा, लाउडस्पीकर, हीटर, मच्छरदानी और छोटीराउदी (झुग्गी) आदि का प्रयोग नही करते कारण आदि के तीन मे बिजली खर्च होती है और शेष में वस्त्र दूपण आता है ।

दिगम्बर मुनि मत्र, यत्र वेदक और ज्योतिषादि से किसी का भविष्य नही बतलाते, न बतलाने वाले को सघ रखते कारण ये सब अनुमान ज्ञान है अर्थात् सर्वत्र सत्य नही बैठते ।

मुनि और श्रावक पर्व के दिनों मे हरी नही खाते कारण हरा पदार्थ जबतक सूख नही जाता तब तक वृक्ष जीव से भिन्न आश्रय जीव उसमे निवास करते है ।

श्रावको का निश्चय धर्म मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य का त्याग रूप है जो कि सबको त्यागना चाहिये और व्यवहार धर्मपूजा शास्त्र, गुरु सेवा सयम (देश सयम) तप (अनशन, ऊनोदर रस-त्याग) और दान है जो कि यथायोग्य सबको करना चाहिये ।

पूजादिषटकर्म का अधिकारी पिडशुद्धि (विधवा विवाह न होने वाले द्विज कुल का जन्म) और भावशुद्धि (मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यत्याग) वाला द्विज (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य) है ।

जिन भगवान का अभिपेक केवल जल से होता है और पूजा सूखे द्रव्य से होती है ।

जिन भगवान का अभिपेक तक द्विज जन्म वाले कर सकते है पूजा तक द्विजनी कर सकती है ऊँच शूद्र मदिर के भीतर दर्शन मात्र कर सकते है और नीच शूद्र मंदिर के बाहिर केवल धोक दे सकते है ।

जिन अभिषेक और पूजा पुरुषो को खडे होकर करना चाहिये, स्त्रियो को अभिषेक के बिना पूजा बैठकर करना चाहिये सामायिक और स्वाध्याय श्रावको को बैठकर करना चाहिये।

यथायोग्य मदिर सब लोगो का है और यथायोग्य जैन धर्म सब धारण कर सकते है।

गोत्र कर्म का उदय जन्म से और बध कर्म से होता है।

कथचित् जड़ क्रिया मे धर्म है।

कारण विना कार्य नही होता है।

त्याग प्रथम होता है भाव पीछे होते है।

जैसा त्याग होता है वैसे भाव होते है।

असयमियो के सत्य वचन भी मिथ्या।

प्रथम पुरुष प्रमाण पीछे वचन प्रमाण।

घर विरक्त प्रतिमा धारी श्वेत वस्त्र पहनते है।

धर्म के नियम बदलते नही।

सद्व्यवहार परमार्थ का साधक है।

स्त्री का पुर्नविवाह नही होता कारण स्त्री भोग वस्तु है।

जीव का स्वभाव धर्म है स्वभाव के सन्मुख जीव का विभाव भी धर्म है।

पचम गुणस्थान वाले ऐलक तक वस्त्र दूपण के कारण ७ वाँ गुणस्थान नही होता मिथ्यात्व गुणस्थान वाले द्रव्य लिंगी मुनि के हो सकता है।

शुद्ध रोटी बेटी से धर्म चलता है।

दाह क्रिया, तीसरा और तेरमी ये आर्यो का शुद्धि विधान है।

पपीता (अरडकाकडी) अभक्ष्य है कारण एक तो दूध फल है काठ फोडकर निकलता है और बीजो का घर नही है टमाटर वेगन होने के कारण अभक्ष्य हैं।

संक्षेप आहारविधि

१ दिगम्बर जैन धर्म का धारी हो ।
२ निर्दोष ब्राह्मण क्षत्री अथवा वैश्य जाति हो ।
३ कुल मे विजाति और अतरजाति में शादी न हुई हो ।
४ कुल में पुर्नविवाह न हुआ हो ।
५ जीवन मे कभी सात व्यसन न सेये हो ।
६ होटल के भोजन का त्यागी हो ।
७ रात्रि भोजन का त्यागी हो ।
८ सव नशीली वस्तुओ का त्यागी हो ।
९ अग मे श्वेत, काले आदि चट्टान न हो ।
१० दौरा न आता हो ।
११ वहुआरभ और निद्य व्यापार न हो ।
१२ अगहीन और अधिक न हो ।
१३ अति वालक और अतिवृद्धि न हो ।
१४ अति निर्धन और मोटी वुद्धि न हो ।
१५ सूतक पातक न लगा हो ।
१६ वनावटी दाँत न लगे हो ।
१७ चश्मा और हाथ मे घडी न वँधी हो ।
१८ लाली, सुर्खी, पाउडर न लगा हो ।
१९ रवर, मसाला और लाख की चूडी न हो ।
२० गर्भवती न हो ।

२१ तीन महीना का बच्चा गोदी में हो ।
२२ रेशमी, ऊनी और कढेमा धोती न हो ।
२३ धोती और जल छानने के वस्त्रों मे माँडी न हो ।
२४ रजस्वला ६ वे दिन चौका मे जा सकती है ।
२५ चोटी मे फीता गोटा न बधा हो ।
२६ ४ दिन की मेहदी न रची हो ।
२७ चौके की मर्यादा बनी हो ।
२८ चौका मे स्वच्छ चदोवा और मिट्टी से पुता हो ।
२९ सामान सब पट्टे पर रक्खा हो ।
३० काँच, चीनी, पत्थर और मसाले के बरतन न हो ।
३१ चूल्हे मे उपला और बुरादा न जला हो ।
३२ चिमनीदार चूल्हे पर भोजन न बना हो ।
३३ नल, तालाब, बावडी और नदी का जल किसी काम में न लिया हो ।
३४ बरतन सूखी मिट्टी से माँजकर दो वार धुले हो ।
३५ हल्दी, सोठि, हीग और पत्ते का साग न बना हो ।
३६ पानी मे बरतन न डुवाओ, उडेल कर लो ।
३७ जाने का मार्ग स्वच्छ हो ।
३८ मार्ग मे नीच जाति का घर न पडता हो ।
३९ श्रावक के चारो ओर हिसक का घर न हो ।
४० चौका मे पैर धोकर जाना चाहिये ।
४१ क्रिया और नवदा भक्ति मे भूल न हो ।

नमस्कार मंत्र

अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक के सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

ऐसा मंत्र पंच नमकार, सब पापों का नाशन हार।
सब मंत्रों में है परधान, पढ़तहि होवे मंगल गान।

ये चार मंगल रूप हैं:—अरहंत मगल रूप हैं, सिद्ध मंगल रूप हैं, साधु मंगल रूप हैं और जिनेन्द्र का कहा हुआ धर्म मंगल रूप है।

ये चार लोक में उत्तम हैं :—अरहंत लोक में उत्तम हैं, सिद्ध लोक में उत्तम हैं, साधु लोक में उत्तम हैं और जिनेन्द्र का कहा हुआ धर्म लोक में उत्तम है।

मैं इन चार की शरण लेता हूँ:—अरहंत की शरण लेता हूं, सिद्ध की शरण लेता हूँ साधुओं की शरण लेता हूँ, और जिनेन्द्र के कहे हुए हुए धर्म की शरण लेता हूँ।

श्रावक धर्मोपदेश

महावीर की ध्वनि सुन कान, सकलपी हिंसा मत ठान ।
महाबीर का सुन्दर बोल, झूँठ वचन मत मुख से बोल ॥१॥
महावीर का सुन व्याख्यान, पर धन समझो धूल समान ।
महावीर का ऐसा गान, पर नारी माता सम मान ॥२॥
महावीर का वचन प्रमाण, परिग्रह का करलो परिणाम ।
महावीर की वाणी पर्म, पूजि न कुगुरु कुदेव कुधर्म ॥३॥
महावीर का वचन विराग, सात व्यसन का करदो त्याग ।
महावीर का वचन विख्यात, तज दो भोजन जो त्रस घात ॥४॥
महावीर की मानो बात, तज दो भोजन जो बहु घात ।
महावीर का सुन उपदेश, खाओ पिओ न मादक लेश ॥५॥
महावीर की वाणी इष्ट, खाओ कभी न वस्तु अनिष्ट ।
महावीर की वाणी स्वच्छ, अनुपसेव्य वस्तू मत भक्ष ॥६॥
महावीर का सुन उपदेश, निश में भोजन करो न लेश ।
महावीर का वचन पिछान, पानी पिओ न जो अनछान ॥७॥
महावीर की ध्वनि गंभीर, कभी न पीवो नल का नीर ।
महावीर के गुण नित गाउँ, कल का पिसा न आटा खाउ ॥८॥
महावीर की करलो साख, आठें चौदस हरी न चाख ।
महावीर का वचन सराउ, न्याय मार्ग से द्रव्य कमाउँ ॥९॥
महावीर का वचन संभार, दीजे दान चार प्रकार ।
महावीर की वाणी नेक, तीरथ करो वर्ष में एक ॥१०॥

महावीर का सुन उपदेश, जीतो क्रोध क्षमा से लेश।
महावीर की ध्वनि सिर पंच, जीतो मद मार्दव से रंच ॥११॥
महावीर से करके प्रीती, छल आर्जव से लो कुछ जीत।
महावीर की ध्वनि का मूल, जीतो लोभ तोष से थूल ॥१२॥

मंगलाचरण

प्रतिक्षण अरहत् सिद्ध को, ध्यावे श्रमण प्रसिद्ध।
स्वर्ग मोक्ष दातार है, वन्दो अरहत् सिद्ध ॥१॥
जिन वाणी जन जीव के, सचित कर्म नशाय।
इससे मुनिवर ध्यावते, नमो सरस्वती माय ॥२॥
मोह तिमिर से दृग ढके, दिये ज्ञान से खोल।
ऐसे गुरुवर देव को, नमो नमोस्तु बोल ॥३॥
पुनि जिनवर आचार्य नमि, सर्व साधु सुख दीव।
सुख वर्धक कथनी पढ़ो, बोधि हेतु भवि जीव ॥४॥
श्रावकचर्य्या ग्रन्थ के, करता जिनवर मूल।
गणधर प्रतिगणधर कथित, उनके बच अनकूल ॥५॥
भाषा दोहा अर्थ युत, रची महा मुनि क्षीर।
तिसका अब वर्णन करूँ, सुनो भव्य धरि धीर ॥६॥
महावीर शुभ रूप हैं, अरु गणधर शुभ रूप।
कुन्द कुन्द शुभ रूप है, जैन धर्म शुभ रूप ॥७॥

* श्री वीतरागाय नमः *

।। श्री महामुनि क्षीरसागर प्रणीत ।।

श्रावकचर्य्या

❀ मंगलाचरण ❀

चर्य्या श्रावक मुनि तलक, पाल भये प्रति बुद्ध ।
उन्हें बन्दि के मैं लिखूं, श्रावक चर्य्या शुद्ध ।।१।।

अर्थ—जो पूर्व क्रमसे श्रावकचर्य्या पालकर पश्चात् मुनिचर्य्या पालकर प्रतिवुद्ध (केवल ज्ञानी) हो गए है उनको मैं क्षीरसागर मुनि वन्दना करके श्रावकचर्य्या ग्रन्थ को लिखता हूँ ।।१।।

आगे श्रावकचर्य्या के भेद दिखाते है ।

श्रावकचर्य्या के विषें, ग्यारह प्रतिमा भंग ।
उनमें क्रम से गुण बढ़ें, पूरव गुण के संग ।।२।।

अर्थ—श्रावकचर्य्या के प्रतिमा भेद से ग्यारह भेद है उन प्रतिमाओ के सव भेदो मे क्रमसे व्यवहारसम्यक् दर्शनादि गुणो के अंश पूर्व प्रतिमाओ के गुणो के साथ वढते है ।।२।।

आगे उन प्रतिमाओ के नाम दिखाते हैं ।

दर्शन व्रत पूजन तथा, अरु चौथी स्वाध्याय ।
सचित त्याग अरु प्रतिक्रमण, सप्तम ब्रह्म कहाय ।।३।।

और त्याग आरंभ अरु, परि-ग्रह अनुमति त्याग।
भिक्षाहार मिलाय के, ग्यारह प्रतिमा भाग ।।४।।

अर्थ—दर्शन, व्रत, पूजन, स्वाध्याय, सचित्तत्याग, प्रतिक्रमण, ब्रह्मचर्य, आरभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और भिक्षाहार ये ग्यारह उन प्रतिमाओ के नाम है ।।३-४।।

आगे दर्शन प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है ।

सत्यदेव गुरु शास्त्र रुचि, अष्ट अंग संयुक्त ।
अरु अठ मद त्रय मूढ विन, षट अनायतनयुक्त।।५।।
मिथ्यातम अन्याय तज, तज अभक्ष आहार ।
षट आरंभ विवेक युत, सो दर्शन पद धार ।।६।।

अर्थ—जो सच्चेदेव, शास्त्र और गुरुओ पर आठ अंग सहित सच्चा श्रद्धान रखता है, आठ मद रहित सच्चा श्रद्धान रखता है, तीन मूढता रहित सच्चा श्रद्धान रखता है और छै अनायतन रहित सच्चा श्रद्धान रखता है, मिथ्यात्व अर्थात् कुगुरु की सेवा नही करता, कुदेव की पूजा नही करता, कुधर्म को नही धारण करता, अन्याय, जुआदि व्यशन सेवन नही करता, अभक्ष्य पदार्थ भक्षण नही करता और षट आरभो (चक्की-चूल्हादि) को विवेक से करता है उसके दर्शन नाम की पहिली प्रतिमा होती है ।।५-६।।

आगे सच्चेदेव के भेद प्रभेद दिखाते है ।

सत्य देव के भेद द्वय, अरहत् और जु सिद्ध ।
तीर्थंकर सामान्य द्वय, अरहत् भेद प्रसिद्ध ।।७।।

अर्थ—सच्चेदेव दो प्रकार के होते है। अरहत और सिद्ध। अरहंत दो प्रकार के होते है। तीर्थंकर और सामान्य ।।७।।

आगे तीर्थंकर देव का स्वरूप दिखाते है ।

अतिशय छै चालीस युत, दोष अठारह छेव ।
गर्भादिक उत्सव सहित, सो तीर्थंकर देव ॥८॥

अर्थ—जो अठारह दोप से रहित हो, छयालीस गुणो से सहित हो, जिनके जन्म के पूर्व १५ महीने तक जन्मनगरी मे रत्न वृष्टि भई हो और गर्भादि कल्याण हुये हो वे सव तीर्थंकर देव है ॥८॥

आगे अठारह दोप के नाम दिखाते हैं ।

मोह त्रयी मद जन्म लय, क्षुधा तृषा भय खेद ।
रोग शोक चिंता चकित, नींद न आरत स्वेद ॥९॥

अर्थ—मोह, राग, द्वेष, जन्म, मरण, बुढापा, क्षुधा, तृषा, भय, खेद, मद, रोग, शोक, चिंता, आश्चर्य, नीद, आरत और पसेव ये अठारह दोपो के नाम हैं ॥९॥

आगे छयालीस अतिशयो की सख्या दिखाते है ।

दश जन्मत दश ईश पद, चौदह सुर कृत लार ।
प्रातिहार्य सब आठ है, नंत चतुष्टय चार ॥१०॥

अर्थ—दश जन्म के, दश केवल ज्ञान के, चौदह देव कृत, आठ प्रातिहार्य और चार अनतचतुप्टय । इस प्रकार तीर्थंकर देव के छयालीस अतिशय होते है ॥१०॥

आगे जनमत के दश अतिशय दिखाते है ।

सुन्दर रूप सुगन्ध तन, स्वेद न करें निहार ।
हित मित वचन अतुल्य बल, रुधिर श्वेत आकार॥११॥

लक्षण इक हज्जार अठ, समचतुरस संठान ।

वज्र वृषभ नाराचयुत, दश जनमत से जान ॥१२॥

अर्थ—सुन्दर रूप, सुगन्धमय शरीर, पसेव रहित शरीर, मल मूत्रादि रहित शरीर, हित मित बचन, अतुल्य बल, श्वेत रुधिर, एक हजार आठ लक्षण, समचतुरससस्थान और वज्रवृषभनाराच-संहनन ये दश अतिशय तीर्थकर देव के जन्म से होते हैं ॥११-१२॥

आगे दश केवल ज्ञान जनित अतिशय दिखाते हैं ।

शत योजन दुर्भिक्ष नहिं, नहिं हिंसा का काम ।

कवलाहार न उपसरग, सब विद्या के धाम ॥१३॥

दिखें चहूँ दिश चार मुख, नहिं बढ़ें नख केश ।

पलक मिलें नहिं छांह तन, दश केवल के भेष ॥१४॥

अर्थ—भगवान के चारो ओर सौ-सौ योजन दुर्भिक्ष का अभाव, हिसा का अभाव, कवलाहर का अभाव, उपसर्ग का अभाव, सब विद्याओं का ईश्वरपना, चहूँ ओर मुख झलकना, नख न बढना, केश न वढना, पलक न मिलना और शरीर की छाया न पड़ना ये दश अतिशय तीर्थंकर देव के केवल ज्ञान के होने पर होते है ॥१३-१४॥

आगे देवरचित चौदह अतिशय दिखाते हैं ।

सब जीवनि में मित्रता; अर्ध मागधी भाष ।

सब ऋतु के तरुवर फलें, निर्मल सब आकाश ॥१५॥

धीमी पवन सुगन्धमय, अरु सुगन्ध जल वृष्टि ।

भू बिन कंटक काँचसम, हर्षमयी सब सृष्टि ॥१६॥

चरण कमल तल कमल हैं, जय-जय ध्वनि नभ सर्व।
धर्म चक्र आगे रहे, अरु अठ मंगल दर्व ॥१७॥

अर्थ—सब जीवनि में मित्रता, अर्धमागधी भाषा, भब ऋतु के वृक्षों का फलना, मेघ रहित आकाश, धीमी पवन, सुगन्धमय पवन, सुगन्धमय जलवृष्टि, कटक रहित भूमि, दर्पण सम भूमि, हर्षमयी सब सृष्टि, चरणो के नीचे कमल, आकाश मे जय-जय ध्वनि, धर्म चक्र और अष्ट मगल द्रव्य ये चौदह देवकृत अतिशय तीर्थकर देव के हैं ॥१५-१७॥

आगे आठ प्रातिहार्य दिखाते है।

तरु अशोक सिंहासना, पुष्प चमर ध्वनि छत्र ।
भामंडल बाजे बजें, समवशरण के अत्र ॥१८॥

अर्थ—भगवान के ऊपर अशोक वृक्ष, नीचे सिहासन, ऊपर पुष्प वृष्टि, चौसठ चमर ढुरना, सब अग से दिव्य वाणी खिरना, ऊपर छत्र, पीछे भामण्डल और देव दुन्दुभि वाजो का वजना। ये आठ प्रतिहार्य है ॥१८॥

आगे अनत चतुष्टय दिखाते है।

ज्ञान अनंत अनंत दृग, अरु अनंत सुख मान।
बल अनंत मिल चार ये, नंत चतुष्टय जान ॥१९॥

अर्थ—अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख और अनतवल ये चार अनंत चतुष्टय है ॥१९॥

आगे इन्द्र द्वारा गर्भादि उत्सव दिखाते है।

गर्भ जन्म तप ज्ञान शिव, उत्सव इन्द्र कराय।
अरु मणि पंद्रह मास तक, जन्म पूर्व बरषाय ॥२०॥

अर्थ—जिनके गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष के समय पर इन्द्रादिक देव आय कर उत्सव (कल्याण) करते हैं और जन्म के पूर्व १५ महीने तक रत्न वृष्टि करते है वे सब तीर्थकर देव है ॥२०॥

आगे सामान्य अरहत का स्वरूप दिखाते है ।

चार घातिया नाश कर, दोष अठारह हान्य ।
नंत चतुष्टय सेवता, सो अरहत् सामान्य ॥२१॥

अर्थ—जो चार घातिया (ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अतराय) कर्मो को और, अठारह दोपों को नाश कर अनत चतुष्टय गुणो को सेवता है उसको सामान्य अरहत (सामान्य केवली) कहते है ॥२१॥

आगे सिद्ध भगवान का स्वरूप दिखाते है ।

अष्ट कर्म को नाश कर, सदा अष्ट गुण सेव ।
लोक शिखर पर निवसते, सो अति सिद्ध सुदेव ॥२२॥

अर्थ—जो अष्ट कर्मो को नाश कर, सदा अष्ट आत्मीक गुणों को सेवन करते है और जिनका निवास स्थान लोक के ऊपर है वे सिद्ध भगवान सवमे उत्तम देव है ॥२२॥

आगे सच्चे शास्त्र का स्वरूप दिखाते है ।

जो भाषा सर्वज्ञ अरु, पूर्वापर न विछेद ।
और असंभव दोष बिन, सो सबवेद सुवेद ॥२३॥

अर्थ—जो सर्वज्ञ देव का कहा हो, जिसमे पूर्वापर विरोध दोष न हो और जिसमे असभव दोष न हो सो सब शास्त्र सुशास्त्र है ॥२३॥

आगे पूर्वापर विरोध का स्वरूप दिखाते है ।

दया सत्य अनतस्करी, शील बता कर धर्म ।
हिंसक लावर चोर अरु, जार प्रशंसा चर्म ॥२४॥

अर्थ–जिस किसी शास्त्र के आदि में दया, सत्य, अचौर्य अथवा ब्रह्मचर्य को धर्म बतलाकर अत मे हिसक, झूँठा, चोर अथवा व्यभिचारी की निंदा न कर उलटी प्रशसा की हो वे सब शास्त्र पूर्वापरविरोधदोष सहित कहलाते है । दयादि धर्म बतलाकर यदि हिसकादि पुरुषों की निंदा की हो तो वे सव शास्त्र पूर्वापरविरोधदोष रहित कहलाते है ॥२४॥

आगे असभव दोष का स्वरूप दिखाते है ।

नर नारी संयोग बिन, मानुष उपज दिखाय ।
तीर्थंकर तन रोग था, गर्भ उलट पलटाय ॥२५॥

अर्थ–जिस किसी शास्त्र मे नर और नारी के सयोग बिना मनुष्य का जन्म हुआ हो, तीर्थंकर के शरीर म रोग भया हो अथवा किसी स्त्री का गर्भ किसी स्त्री के उदर मे वदल दिया गया वतलाया हो सो सव शास्त्र असभव दोष सहित है जिसमे इस तरह के दोष न लिखे हो सो सब शास्त्र असभव दोष रहित है ॥२५॥

आगे उस शास्त्र के विषय भेद दिखाते है ।

पुण्यकथा आचरण अरु, गणित द्रव्य अनुयोग ।
चार भेद जिन बैन, के, गणधर किये सनोग ॥२६॥

अर्थ–कथानुयोग, चरणानुयोग, गणितानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चार भेद उस सच्चे शास्त्र के श्री गणधर देव ने वतलाये है ॥२६॥

आगे कथानुयोग का स्वरूप दिखाते है ।

पुण्य पुरुष जितने भये, जिन वर आदिक लोग।
जीवन वृति जिसमें लिखी, वही कथा अनुयोग ॥२७॥

अर्थ—जिसमे श्री जिनवर आदिक पुण्य पुरुषो का यथार्थ जीवन चरित्र लिखा हो उसको सच्चा कथानुयोग (प्रथमानुयोग) शास्त्र कहते है ॥२७॥

आगे चरणानुयोग का स्वरूप दिखाते है।

मुनि श्रावक चारित्र की, उत्पति रक्षा वृद्धि।
यथा तथा जिसमें लिखी, वृति अनुयोग प्रसिद्धि ॥२८॥

अर्थ—जिसमें मुनि और श्रावक के चारित्र की उत्पत्ति, रक्षा और बढवारी की विधि जैसी होनी चाहिए वैसी यथार्थ लिखी हो उसको सच्चा चरणानुयोग शास्त्र कहते है ॥२८॥

आगे गणितानुयोग का स्वरूप दिखाते है।

लोकालोक विभाग अरु, युगवर्तन गति चार।
भेद सहित जिसमें लिखा, गणित योग निरधार ॥२९॥

अर्थ—जिसमे लोक और अलोक का भेद लिखा हो, जिसमे छै कालों के परिवर्तन का स्वरूप लिखा हो, जिसमे चार गतियो के भेद, प्रभेदों का और उनके गमनागमन के कारणो का वर्णन लिखा हो उसको सच्चा गणितानुयोग (करणानुयोग) शास्त्र कहते है ॥२९॥

आगे द्रव्यानुयोग का स्वरूप दिखाते है।

सप्त तत्व का कथन कर, भिन्न आत्म दिखलाय।
ऐसा जिसमें कथन है, द्रव्ययोग कहलाय ॥३०॥

अर्थ—जिसमें सप्त तत्व का वर्णन करके आत्म तत्व को सब

तत्वों मे भिन्न सिद्ध कर दिया हो उसको सच्चा द्रव्यानुयोग शास्त्र कहते है ॥३०॥

आगे सच्चे गुरुओ का स्वरूप दिखाते है।

पालें उत्तर मूल गुण, पंचाचार अवाध।
जग प्रपंच से दूर हों, सो सब साध सुसाध ॥३१॥

अर्थ—जो निर्दोष मूलगुण, उत्तरगुण और पचाचारो का पालन करते हो और जग के शुभाशुभ प्रपचो से सदा दूर रहते हों, सो सब साधु सुसाधु हैं ॥३१॥

आगे गुरुओ के पद भेद दिखाते है।

गणधर श्रुतधर अंगधर, धर अध्यात्म ज्ञान ।
आचारज पाठक श्रमण, सात भेद गुरु जान ॥३२॥

अर्थ—गणधर, श्रतकेवली, अगधारी, अध्यात्मज्ञानी, आचार्य, उपाध्याय और सामान्य मुनि ये सात सच्चे गुरुओ के भेद हैं ॥३२॥

आगे आठ अग के भेद दिखाते है।

शंका कांक्षा ग्लानि बिन, अरु अमूढ़ गुण वत्य ।
उपगूहन अरुथितिकरण, प्रभावना वात्सलय ॥३३॥

अर्थ—निशकित, निकाक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ सच्ची श्रद्धा के अग है ॥३३॥

आगे निशकित अग का स्वरूप दिखाते है।

तज जिन-जिन श्रुत जैनमुनि, अन्य न पूज्य प्रकार।
ऐसी रुचि संशय रहित, जिमिनिश्चल असि धार ॥३४॥

अर्थ—जो पुरुष ऐसा विचार रखकर तलवार की धार के समान निश्चल (इधर-उधर न होना) श्रद्धा रखता है कि जिनेंद्र, मुनीन्द्र और जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य कोई पूजने योग्य पूज्य नही है, उसके निशकित अग होता है ॥३४॥

आगे निशकित अग में प्रसिद्ध अजन चोर को दिखाते हैं।

अंजन सरधा सेठ धर, काटी छींका डोर।
नभ गामिनि, विद्या मिली, भया देव वह चोर ॥३५॥

अर्थ–राजगृही नगरी में अंजन चोर चोरी करता था। एक दिन वह वेश्या के कहने से रानी के गले से हार चुराकर भागा। जब राजदूतो ने उसका पीछा किया तब वह हार फेंककर जगल की ओर भाग गया वहाँ उसने सोमदत्त माली को एक वृक्ष पर चढते-उतरते देखा। जिसकी डाल पर सीका बँधा था और नीचे भाले गढे थे। तब चोर ने माली से पूछा क्यों चढता और क्यो उतर आता है। तब माली ने कहा कि मै आकाश गामिनी विद्या सिद्ध करने चढता हूँ और उतर इसलिए आता हूँ कि यदि जिनदास सेठ के वचन इस तरह विद्या सिद्ध करने वाले मिथ्या निकल गये तो मर जाऊँगा। चोर ने विचारा कि जिनदास सेठ झूंठा उपाय कभी नही बतला सकता है। तब उसने छुरी से छीका ताण ताण सेठ वचन प्रमाण कह कर काट दिया और आकाश गामिनी विद्या सिद्ध करली तब उसके द्वारा सुमेर पर्वत पर सेठ के दर्शनो के लिए गया। वहाँ मुनियो का उपदेश सुनकर मुनि हो गया। और तप-कर स्वर्ग मे देव हुआ इसलिये निशकित अग का पालन करना चाहिये ॥३५॥

आगे निकाक्षित अग का स्वरूप दिखाते है।

जग सुख कर्माधीन अरु, दुख मिश्रित अघ बीज।
अंतसहित लख नहिं चहे, सोअवांछ गुण लीज ॥३६॥

अर्थ—जो पुरुप ऐसा विचार कर सांसारिक सुख नही चाहता कि वह (सासारिक मुख) अत सहित है, किसी-न-किसी दु ख से मिला हुआ होता है, शुभ कर्म के उदय के अधीन है और जिसको भोगने पर पाप कर्म का बध होता है उसके निकाक्षित अग होता है ।।३६।।

आगे निकाक्षित अग में प्रसिद्ध अनंतमती को दिखाते है ।

नंत मती वाँक्षा तजी, पिता साथ व्रत धार ।
संकट सह आर्या भई, सुर पुर अंत सिधार ।।३७।।

अर्थ—अनंतमती चम्पा नगरी के प्रियदत्त सेठ की पुत्री थी । एक दिन सेठ उसको मुनियो के दर्शन के लिए ले गया । वहाँ सेठ ने आठ दिन के लिए ब्रह्मचर्य व्रत लिया और विनोद वश अनत-मती को भी लिवा दिया । जब पुत्री तरुण हुई तब उसका विवाह करने लगा परन्तु पुत्री ने व्रत लेने की स्मृति दिलाकर विवाह करने से इन्कार कर दिया । एक दिन वह झूला मे झूल रही थी कि उसे एक विद्याधर हर ले गया । उसी समय उसने अपनी स्त्री को पीछे आते हुए देखकर उसके भय से अनतमती को अपनी विद्या के बल से एक भयकर अटवी मे छोड दिया । वहाँ से उसे भील राजा ले गया । जब भील ने उसका शील भग करना चाहा तो बनदेवी ने उसकी रक्षा की । इस पर भील ने उसे उसके पिता के घर पहुँचाने को एक सेठ को दिया तो वह भी मोहित हो गया । तब अनतमती ने उसे बहुत डाटा जिससे चिढकर सेठ ने उसे वेश्या को दे दिया । वेश्या शीलभग करने मे असफल हुई तब उसने उसे एक राजा को दे दिया । राजा से बनदेवी ने पुन शील की रक्षा की । तब राजा ने उसे जगल मे छुडवा दिया । वहाँ से वह भ्रमण कर एक आर्यिका जी के पास आई । वही उसके माता पिता उसे मिले और उनके सामने वह आर्यिका हो गई और तप कर स्वर्ग मे देव हुई इसलिए निकाक्षित अग का पालन करना चाहिये ।।३७।।

आगे निर्विचिकित्सा अग का स्वरूप दिखाते है।

तन स्वभाव से अशुचि है, रत्नत्रय से शुद्ध ।
इससे ग्लानि करे नहीं, ग्लानि रहित प्रतिबुद्ध ।।३८।।

अर्थ—जो पुरुष ऐसा विचार कर किसी धर्मात्मा से ग्लानि नही करता कि मलमूत्रादि से भरा हुआ शरीर स्वभाव से ही अपवित्र है तथापि सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के धारण करने से पवित्र (पूज्य) हो जाता है उसके निर्विचिकित्सा अग होता है ।।३८।।

आगे निर्विचिकित्सा अग में प्रसिद्ध उद्दायन को दिखाते है।

श्रवण वमन लख घर विषैं, उद्दायन तज ग्लान ।
शुद्धि करी निज हाथ से, अंत लहा सुर थान ।।३९।।

अर्थ—कच्छ देश के रोरक नगर का राजा उद्दायन था। उसके निर्विचिकित्सा अग की परीक्षा करने के लिए एक देव मुनि का भेष बनाकर आहार के लिए आया। राजा ने उसे भक्तिभाव से पडगाहा और शुद्ध आहार कराया। जब आहार कर मुनि ने वमन कर दिया तब राजा ने अपने कर्म की निदा के साथ मुनि के शरीर को शुद्ध किया। यह भक्ति देखकर उस मुनि रूपी देव ने अपना असली रूप प्रकट कर राजा की बहुत प्रसशा की और अपने धाम चला गया। कुछ दिनो के पश्चात् राजा को वैराग्य हुआ और मुनि दीक्षा धारण कर स्वर्ग में देव हुआ। इसलिये मुनियो की सेवा करनी चाहिये ।।३९।।

आगे अमूढदृष्टि अग का स्वरूप दिखाते है ।

कुपथ दुक्ख पथ कुपथ अरु, कुपथी से मन दूर ।
वचन न थुति जोड़े न कर, सो अमूढ़ गुण शूर ।।४०।।

अर्थ—जो पुरुष ऐसा विचार कर अज्ञानी नही होता कि कुमार्ग (हिसादि पाँच पाप) और कुमार्गी (हिंसकादि पाँच पापी) दु:ख के कारण है इनको भला नही जानना चाहिये। इनकी स्तुति नही करनी चाहिये और इनको हाथ नही जोडना चाहिये। उसके अमूढ दृष्टि अग होता है।।४०।।

आगे अमूढ दृष्टि अग में प्रसिद्ध रेवती को दिखाते है।

तत्व दृष्टि धर रेवती, गई न दर्शन काज।
होंय न जिन पच्चीसवें, उस फल सुर पर्याय ।।४१।।

अर्थ—रेवती मथुरा के राजा वरुण की रानी थी। वह अमूढ दृष्टि अग का पालन करती थी। एक दिन उसकी परीक्षा के लिए एक क्षुल्लक आया जो कि पहले विद्याधर था। उसने अपनी विद्या के बल से नगर के चारो ओर क्रमसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश और जिनेन्द्र के समवशरण की वनावटी रचना की। जिसके दर्शन के लिए राजा, प्रजा आदि सव आये किन्तु रेवती रानी नही आई। इस परीक्षा से उसको सतोष न हुआ तब वह अपना व्याधियो से युक्त क्षुल्लक का भेप धर आहार के लिए रेवती रानी के द्वार पर आया। रानी ने भक्तिभाव से उसे आहार कराया। आहार कर उसने वमन कर दिया। इसे देखकर रानी ने अपनी निंदा के साथ उसकी वैयावृत्त की और कराई। वैयावृत्त को देखकर उसका भ्रम दूर हो गया और तव उसने अपना असली रूप वनाकर रानी की वहुत प्रसशा की और कहा कि मेरे गुरु गुप्ताचार्य है उन्होने तेरे लिये धर्मवृद्धि दी है मैने तेरी व्यर्थ परीक्षा की। ऐसा कहकर अपने स्थान चला गया। अत मे तप धारण कर रेवती रानी स्वर्ग में देव हुई इसलिए विचारशील बनना चाहिये ।।४१।।

आगे उपगूहन अग का स्वरूप दिखाते है।

देव शास्त्र गुरु धर्म की, मूर्खाश्रय या क्रूर ।
निंदा ढक जो सत करे, उपगूहन गुण शूर ॥४२॥

अर्थ—जो पुरुष मूर्ख अथवा क्रूर जनों द्वारा देव, शास्त्र, गुरु और धर्म की निंदा होती देखकर अथवा सुनकर उसको तन, मन और धन देकर दवा देता है उसके उपगूहन अंग होता है ॥४२॥

आगे उपगूहन अंग में प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्त सेठ को दिखाते है।

उपगूहन जिन भक्त धर, ढका दोष लख भेष ।
छत्र न चोरा छोड़ दो, उस फल स्वर्ग विशेष ॥४३॥

अर्थ—गोड देश के ताम्रलिप्त नगर में एक जिनभक्त सेठ रहता था। उसके महल मे श्री पार्श्वनाथभगवान का चैत्यालय था। भगवान के ऊपर रत्नमयी छत्र लगा था। छत्र के बीच एक बहुमूल्य रत्न लगा था। यह समाचार पटना के यशोध्वज राजा के पुत्र सुबीर ने सुना, जो कि चोरों का राजा था तब उसने सूर्य नाम के चोर को छत्र चुराने भेजा। वह बनावटी क्षुल्लक वनकर सेठ के यहाँ आया और चैत्यालय मे रहने लगा। कई दिनों के पश्चात् एक दिन सेठ ने कहा आज मैं बाहर जा रहा हूँ अत आपकी सेवा में न आ सकूँगा। रात को उसने सोचा कि सेठ चला गया होगा अतः छत्र चुराने के लिए यह अच्छा मौका है। यह सोचकर वह छत्र निकाल कर चल दिया परन्तु राजदूतो ने उसे पकड लिया। कोलाहल सुनकर सेठ महल से बाहर निकला और क्षुल्लक को देखकर सेठ ने सोचा कि इस समय मैं इसे चोर ठहराता हूँ तो धर्म की बहुत निंदा होगी। उस निंदा की भय से सेठ ने कहा कि यह तो मैने मंगवाया था आप इन्हे छोड दीजिये। अत मे उपगूहन अंग के प्रसाद से सेठ ने देवगति पाई। इसलिए धर्मात्माओ के दोष ढकना चाहिये ॥४३॥

आगे स्थितिकरण अंग का स्वरूप दिखाते है।

सरधा या आचरण से, डिगे कहीं धर्मज्ञ।
उसे देख जो थिति करे, थिति करण सर्वज्ञ ॥४४॥

अर्थ—जो पुरुष किसी मुनि अथवा श्रावक को किसी कारणवश सम्यक्दर्शन अथवा सम्यक्चरित्र से डिगता देखकर उसको तन मन अथवा धन लगा कर उसमे स्थिर कर देता है, उसके स्थितिकरण-अंग होता है ॥४४॥

आगे स्थिति करण अंग मे प्रसिद्धि वारिषेण को दिखाते है।

वारिषेण श्रेणिक तनय, निज नारी दिखलाय।
पुष्पडाल को थिर किया, अंत स्वर्ग पर्याय ॥४५॥

अर्थ—वारिषेण मुनिराज राजा श्रेणिक के सुपुत्र थे। उनको एक दिन उनके मित्र पुष्पडाल ने आहार कराया और आहार कराकर उनको पचाने गया। कुछ दूर पहुँचने पर उसने लौटने की इच्छा की किन्तु मुनिराज ने उसको लौटने न दिया और बन मे जाकर उसको मुनि बना लिया और बारह वर्ष उसको साथ रक्खा किन्तु वह अपनी नव विवाहिता कानी स्त्री को नही भूला। इस पर वारिषेण मुनिराज उसको अपने घर ले गये और देवांगना के समान अपनी सब स्त्रिया उसको दिखाई। उनको देखकर वह बहुत लज्जित हुआ और घोर तपश्चरण मे लग गया। अत में वे दोनो स्वर्ग के पात्र हुये इसलिये धर्म से डिगते हुये को किसी रीति से धर्म मे दृढ करना चाहिये ॥४५॥

आगे वात्सल्व अंग का स्वरूप दिखाते है।

साधर्मी से कपट बिन, धर्म भाव जो होय।
यथा योग्य आदर करे, वात्सल्य गुण सोय ॥४६॥

अर्थ—जो धर्मात्माओ से कपटभाव को छोडकर धर्मभाव रखता है और उनके पदस्थ के अनुसार आदर और सत्कार करता है उसके वात्सल्य अग होता है ॥४६॥

आगे वात्सल्य अंग में प्रसिद्ध विष्णू कुमार मुनि को दिखाते है।

संघ अंकपन चार्य पर, धरा विष्णु वात्सल्य ।
बनि बौना दे दंड बलि, सबको किया निशल्य ॥४७॥

अर्थ—विष्णु कुमार एक विक्रिया ऋद्धि के धारी मुनिराज थे। जब उन्होने पुष्पदत क्षुल्लक के मुख से यह सुना कि हस्तिनापुर मे बलि मंत्री द्वारा अंकपनाचार्य के संघ को घोर उपसर्ग हो रहा है। तब उन्होने अपना वामन का रूप बनाकर बलि से तीन पैर पृथ्वी की याचना की तव उसने उनको दे दी, फिर मुनिराज ने विक्रिया-ऋद्धि से अपना शरीर बढा कर एक पैर सुमेर पर्वत पर दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रख दिया और तीसरे पैर रखने के लिए भूमि माँगने लगे। इस घटना को देखकर सब भूमडल में कोलाहल मच गया और बलि मंत्री घवडा कर चरणो में पड गया और क्षमा याचना की। इस प्रकार मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ और वात्सल्य गुण की महिमा हुई। इसलिये धर्म और धर्मात्माओ की पक्ष रखना चाहिये ॥४७॥

आगे प्रभावन अग का स्वरूप दिखाते है।

जिन उत्सव या श्रुत लिखा, या मुनि संघ चलाय।
दान सुपात्रहि देहि कर, प्रभावना गुण पाय ॥४८॥

अर्थ—जो पुरुप जिन भगवान का मदिर बनवाकर मदिर मे वेदी बनवाकर अथवा वेदी मे जिनबिब बिराजमान करने के लिये किसी प्रकार का उत्सव करता है, जिनवाणी को लिखवा कर धर्मात्माओ को भेट स्वरूप देता है, मुनियों का विहार देशांतरों मे कराता है

अथवा सुपात्रो को दान देता है उसके प्रभावना अग होता है ।।४८।।

आगे प्रभावना अग मे प्रसिद्ध वज्रकुमार मुनि को दिखाते है ।

प्रभावना समकित विषैं, मुनिवर वज्रकुमार ।
विद्याधर को भेजकर, रथ उत्सव विस्तार ।।४९।।

अर्थ—वज्रकुमार एक मुनिराज थे । उनके पिता उनके जन्म के पूर्व ही मुनि हो गये थे यह बात उनकी माता ने सुनी तो वह क्रोधायमान होकर मुनि के चरणो मे बालक वज्रकुमार को छोड कर चली गई । उसी समय एक दिवाकर नाम का विद्याधर वहां आया और वज्रकुमार को उठाकर उसने अपनी रानी को पालन-पोपण के लिए दे दिया । जब वे बडे हुए तो उस रानी के एक पुत्र हुआ । जब वह बडा हुआ तब उस रानी ने धाय से कहा कि वज्रकुमार के रहते मेरे पुत्र को राज्य कैसे मिल सकता है । यह बात वज्रकुमार ने सुनी तो वे मुनि हो गये और घोर तप करने लगे । एक दिन पूर्तिगध राजा की रानी उर्मिला आई और नमस्कार कर कहने लगी कि "मुनिराज मैं अन्नजल तभी ग्रहण करूँगी जब मेरा (जिनेन्द्र देव का) रथ मेरी सौत के रथ से आगे चलेगा ।" यह सुनकर मुनिराज ने उसी समय दर्शन को आये हुए दिवाकर विद्याधर को भेजकर रथ निकलवा दिया इसलिए किसी भी रीति से धर्म की उभावना करना चाहिए ।।४९।।

आगे आठो अगो को आवश्यक दिखाते है ।

अंगहीन दर्शन विषें, भव क्षय शक्ती नांहिं ।
हीनाक्षर जिमी मंत्र में, विष हर शक्ती नांहिं ।।५०।।

अर्थ—जैसे मत्र के सीमित अक्षरो मे से कोई एक अक्षर कम होवे तो उस मत्र से विच्छू आदि का विष नही उतर सकता तैसे आठ अगो मे से एक दो आदि अग कम होवे तो उस दर्शनप्रतिमा

(सम्यक्त्व) से ससार क्षय नही हो सकता यहा मत्र का केवल दृष्टान्त दिया है पूर्ण मत्र से भी विष उतरे और न भी उतरे कोई नियम नही इस कारण जैन धर्म मे मत्रादि विद्या का निषेध है ॥५०

आगे आठ मदो का स्वरूप दिखाते है ।

देह जाति कुल ऋद्धि बल, पूजा तप अरु ज्ञान ।
इन्हें पाय जो मद करे, सो मद आठ बखान ॥५१॥

अर्थ—निरोग और सुन्दर शरीर (सुन्दररूप) उच्चजाति, उच्च कुल, विपुल धन, शारीरिक प्रवल बल, लोक मान्यता, उग्रतप अथवा विशेष ज्ञान ये आठ शक्तिया, पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त होती है जो इनका सदुपयोग (धर्म साधन) करता है उसके ये आठ शक्तियाँ ही कहलाती है जो दुरुपयोग (पाप सेवन) करता है उसके ये आठ मद कहलाते है ॥५१॥

आगे रूपमद का स्वरूप दिखाते है ।

रूपवंत लख जल मरे, लख कुरूप को रार ।
गुण गावे निज रूप के, सो मद रूप निहार ॥५२॥

अर्थ—जो अपने से अन्य रूपवान को देखकर जल जाता है, कुरूप को देखकर झगडा (चिढाया) करता है और अपने रूप का गुणगान (प्रशसा) किया करता है उसके रूप मद होता है ॥५२॥

आगे रूपमद मे प्रसिद्ध सत्यभामा को दिखाते है ।

लख सतभामा रूपमद, नारद क्रोधित होय ।
खोज कृष्ण को रुक्मिणी, दिया रूपमद खोय ॥५३॥

अर्थ—सत्यभामा कृष्ण नारायण की पटरानी थी । उसको अपने रूप का बडा मद था । एक दिन वह अपने महल मे शृ गार

कर रही थी कि अचानक नारद जी आ पहुचे । उसने उनकी विनय नही की । इस पर नारद जी क्रोधित होकर कैलास पर जाकर सोचने लगे कि सत्यभामा को दुखी कैसे करूँ यदि इसका हरण कराता हूँ तो कृष्ण जी अप्रसन्न होते हैं जो कि मुझे इष्ट नही फिर क्या करू तब उनके विचार ने यह निश्चय किया कि इससे अधिक रूपवाली कन्या का विवाह कृष्ण जी के साथ करादूँ तो कृष्ण जी प्रसन्न होगे और सत्यभामा दु खी होगी अत इसकी पूर्ति के लिये वे उससे अधिक रूपवती कन्या की खोज करने लगे और रुक्मिणी को खोजकर कृष्णजी के साथ विवाह करा दिया जिसको देखकर सत्यभामा का रूप मद उतर गया और वह वहुत दुखी हुई इस-लिये रूपमद नही करना चाहिये ॥५३॥

आगे जाति मद स्वरूप दिखाते है ।

ऊँच जाति लख जल मरे, नीच जाति लख रार ।
गुण गावे निज जाति के, सो मद जाति निहार ॥५४॥

अर्थ—जो अपने से अन्य ऊँच जाति वाले को देखकर जलता है, नीच जाति वाले को देखकर झगडा (दुतकार) करता है और अपनी जाति के गुण (प्रशसा) सदा गाया करता है उसके जाति मद होता है ॥५४॥

आगे जातिमद मे प्रसिद्ध अग्निभूत को दिखाते हैं ।

अग्निवायु दो विप्र सुत, सात्विक मुनिके संग ।
वाद किया धर जातिमद, कीलासुर ने अंग ॥५५॥

अर्थ—अग्नि भूत और वायु भूत दो ब्राह्मण के पुत्र थे । वे जातिमद धारण कर, श्री नदिवर्द्धन मुनिराज का सग आया सुनकर उनकी निदा करने लगे और लोगों को भ्रम में डालने लगे कि

ब्राह्मण पूज्य होते है । तुम मुनियो को पूजने क्यो जाते हो, वे मूर्ख है । चलो हम उनसे विवाद करे । ऐसा कहकर वे वहाँ आये और मार्ग मे मिले हुए सात्विक मुनिराज से विवाद करने लगे तब मुनिराज बोले "तुम यह तो बताओ कि तुम कहाँ से आये हो ?" तब वे बोले "तू नही जानता हम ग्राम से आये है ।" इस पर मुनिराज ने कहा, "यह तो सभी जानते हैं । हम तो यह पूछते है कि परभव मे तुम कहाँ से आये ?" तब वे बोले कि तू ही बता । तब मुनि ने कहा "तुम दोनो श्याल थे । तुम्हारी खाल की भाथडी बनी इस गूँगे ब्राह्मण के घर पर रक्खी है । यह अपने लडके के पुत्र हुआ है इस कारण से बोलता नही ।" यह सुनकर गूँगा तुरत मुनि हो गया और वे दोनो लज्जित होकर घर चले गए । रात को वे सब सघ को मारने आये किन्तु उनको मार्ग मे वही मुनि मिल गये । उन्होने जब मुनि पर तलवार का वार किया तो देव ने उनको कील दिया । प्रात काल उनकी बहुत निदा हुई इसलिये जातिमद नही करना चाहिये ॥५५॥

आगे कुल मद का स्वरूप दिखाते है ।

ऊँच सुकुल लखजल मरे, लख नीचे कुल रार ।
गुण गावे निज कुल तने, सो कुल मद निरधार ॥५६॥

अर्थ—जो अपने से ऊँच कुल वाले को देखकर जलता है, नीचे कुल वाले को देखकर झगडा (दुतकार) करता है और अपने कुल के गुण (प्रशसा) सदा गाया करता है उसके कुल मद होता है ॥५६॥

आगे कुलमद मे प्रसिद्ध पृथू राजा को दिखाते है ।

पृथू भूप कुलमद धरा, लव अंकुश के साथ ।
रण से भज ब्याही सुता, मद तज जोड़े हाथ ॥५७॥

अर्थ—पृथ्वीपुर का राजा पृथू था । जब उसकी पुत्री कनक-

माला को वज्रजघ ने सीताजी के पुत्र मदनाकुश के लिए मांगा तब पृथू बोला कि जिसके कुल का पता नही उसको पुत्री देना कैसा ? यह सुन वज्रसघ ने चढाई की और सहायता के लिए अपने और को पुडरीक नगरी से बुलाया । पुत्रो के साथ लवाकुश पुत्रो मदनांकुश भी आये और उन्होने पृथू से महायुद्ध किया जिससे वह भागने लगा । तव लवाकुश और मदनाकुश ने कहा कि अज्ञात कुल वालो के सामने से भागते तुझे लज्जा नही आई । यह सुनकर पृथू ने क्षमा मांगी और गर्व तजकर अपनी पुत्री का विवाह कर दिया । इसलिये कुलमद नही करना चाहिये ॥५७॥

आगे धन मद का स्वरूप दिखाते है ।

धनी देख कर जल मरे, निर्धन लख दुतकार ।
गुण गावे निज धन तने, सो धन मद निरधार ॥५८॥

अर्थ—जो अपने से अधिक धनवान को देखकर जलता है, निर्धन को देखकर दुतकारता है और अपने धन के गुण (प्रशसा) सदा गाया करता है उसके धन मद होता है ॥५८॥

आगे धनमद मे प्रसिद्ध धनपाल को दिखाते है ।

धर धनमद धनपाल ने, विप्र रंक ठहराय ।
असली हार छिपाय के, दंड भूप से पाय ॥५९॥

अर्थ—कोशलदेश की वैजयन्ती नगरी मे एक धनपाल सेठ रहता था । उसके पास एक दिन एक ब्राह्मण हार लेकर आया । तब उसने धनमद मे आकर असली हार को छुपाकर नकली हार दे दिया और कहा कि यहां से भाग जा, मैं तुझे ब्राह्मण समझकर छोड देता हू, यह तो नकली हार है । यह सुनकर ब्राह्मण राजा के पास गया । राजा ने सुखानंद कुमार द्वारा उसकी सेठानी से असली हार मंगाकर दिया । तब उस ब्राह्मण ने वह हार सुखानद

कुमार को भेट कर उसके साथ मनोरमा का सबध कर दिया। राजा ने धनपाल का सब धन लुटवा लिया और गधा पर चढवा कर नगर के वाहर निकलवा दिया। इसलिये धनमद नही करना चाहिये ॥५९॥

आगे वल मद का स्वरूप दिखाते है।

सबल देख कर जल मरे, निरबल लख कर रार।
गुण गावे निज वल तने, सो बल मद निरधार ॥६०॥

अर्थ—जो अपने से अधिक वलवान को देखकर जलता है, निर्वल को देखकर झगडा (तग) करता है और अपने बल के गुण (प्रशसा) सदा गाया करता है, उसके बल मद होता है ॥६०॥

आगे बलमद मे प्रसिद्ध खरदूषण को दिखाते है।

खरदूषण बलमद धरा, किया न कछू विचार।
युद्ध क्षेत्र में प्राण दे, किया दुखी परिवार ॥६१॥

अर्थ—खरदूषण रावण का बहनोई था। वह अपनी स्त्री पर विश्वास कर विना विचारे वलमद मे आकर श्रीरामचद्रजी से युद्ध करने के लिए अकेला ही चल पडा। परन्तु रणक्षेत्र मे लक्षमणजी के हाथ से मर कर अपने सव परिवार को दुखी करता भया। इस कारण बलमद कभी नही करना चाहिये ॥६१॥

आगे पूजा मद का स्वरूप दिखाते है।

गुरु पूजा लख जल मरे, लघु पूजा लख रार।
निज पूजा गुण गावता, सो पूजा मद धार ॥६२॥

अर्थ—जो अपने से बडे की पूजा (मान्यता) को देखकर

जलता है, छोटे की पूजा देखकर झगडा करता है और अपनी पूजा सदा चाहता है उसके पूजा मद होता है ॥६२॥

आगे पूजा मद मे प्रसिद्ध अर्ककीर्ति को दिखाते है।

अर्ककीर्ति सुत भरत का, पूजा मद को धार।
जयकुमार से युद्धकर, निंदा पाई भार ॥६३॥

अर्थ—अर्ककीर्ति भरत चक्रवर्ती के सुपुत्र थे। वे सुलोचना के स्वयवर मे गये थे। सुलोचना ने उनके गले मे वर माला न डालकर उनके सेनापति जयकुमार के गले में डाल दी। जिसके कारण वे रुष्ट होकर युद्ध को तयार हो गये जिसका फल यह हुआ कि सब राजाओ के बीच जयकुमार ने अर्ककीर्ति को बाँधकर रण सग्राम मे छोड दिया और सुलोचना को लेकर हस्तिनापुर चले गये इसलिये विचार करना चाहिये कि तीर्थंकर का नाती और चक्रवर्ती का पुत्र ऐसे अर्ककीर्ति राजा ने पूजा मद धारण कर सुख नही पाया तो और कौन सुखी हो सकता है ॥६३॥

आगे तप मद का स्वरूप दिखाते है।

गुरु तप को लख जल मरे, लघु तप को लख रार।
गुण गावे निज तप तने, सो तप मद निरधार ॥६४॥

अर्थ—जो अपने से अधिक तप वाले को देखकर जलता है, कम तप वाले को देखकर ईर्ष्या करता है और अपने तप की सदा प्रशसा करता है उसके तप मद होता है ॥६४॥

आगे तपमद मे प्रसिद्ध दीपायन मुनि को दिखाते है।

दीपायन तप मद धरा, सुनकर वचन कठोर।
भस्म करी सब द्वारिका, लहा नरक दुख घोर ॥६५॥

अर्थ—दीपायन मुनि एक राजा थे। जब भगवान नेमीश्वर के समवशरण मे उन्होने यह सुना कि द्वारका मेरे द्वारा भस्म होगी तब वे मुनि होकर विदेश चले गये और वहाँ घोर तप करने लगे। अत मे वे भ्रम से बारह वर्ष के पूर्व ही द्वारिका के उद्यान मे आ गये। वहाँ यादव पुत्र मदिरापान कर क्रीड़ा कर रहे थे। मुनि को देखकर उन पुत्रो ने दुर्वचन बोले और पत्थर मारे। इस घटना से दीपायन मुनि को क्रोध आ गया और उन्होने द्वारिका जला दी। उस क्रोध के फल से वे सातवे नरक गये इसलिये तपमद भी अच्छा नही होता ॥६५॥

आगे ज्ञानमद का स्वरूप दिखाते है।

बहु ज्ञानी लख जल मरे, लघु ज्ञानी लख रार।
गुण गावे निज ज्ञान के, सो मद ज्ञान निहार॥६६॥

अर्थ—जो अपने से अधिक ज्ञानवान को देखकर जलता है, कम ज्ञान वाले को देखकर निन्दा करता है और अपने ज्ञान की प्रशसा सदा किया करता है उसके ज्ञान मद होता॥६६॥

आगे ज्ञानमद मे प्रसिद्ध बौद्ध गुरु को दिखाते हैं।

संघ श्री धर ज्ञान मद, रुकवाया रथ जैन।
हार गया अकलंक से, सुन जिनमत के बैन॥६७॥

अर्थ—सघश्री एक बौद्ध गुरु था। उसने ज्ञानमद को धारण कर राजा हिमशीतल को जैन धर्म से विपरीत कर, उसकी ही रानी मदन सुन्दरी का जैन रथ निकलने से रुकवा दिया और एक विज्ञापन भी निकलवा दिया कि जब तक कोई सघश्री से शास्त्रार्थ न कर लेगा तब तक कोई जैन रथ नही निकल सकेगा। यह समाचार सुनकर रानी ने श्री अकलकदेव को बुलवाकर सघश्री से

शास्त्रार्थ कराया उसमे सघश्री हार गया। राजा और प्रजा के द्वारा उसने बहुत निंदा पाई इसलिये ज्ञानमद नही करना चाहिये ॥६७॥

आगे धर्मी को निंदा से अपनी हानि दिखाते हैं।

अपनी पूजा के लिए, निंदे धर्मी कर्म।
सो स्वधर्म निंदा करे, धर्मी बिना न धर्म ॥६८॥

अर्थ—जो अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए दूसरे धर्मात्मा की निदा करके उसकी मान प्रतिष्ठा गिराने का प्रयास करता है वह अपने ही धर्म की मान प्रतिष्ठा गिराता है। कारण धर्म की निदा से धर्मी की निंदा और धर्मी की निदा से धर्म को निदा होती है। इस कारण धर्मात्माओ की मान प्रतिष्ठा गिराने का प्रयास कभी नही करना चाहिये ॥६८॥

आगे मूढता के भेद दिखाते है।

लोक मूढ़ता प्रथम है, देव मूढ़ता दोय।
गुरू मूढ़ता तृतिय है, भेद मूढ़ता जोय ॥६९॥

अर्थ—मूढता तीन प्रकार की होती है। लोक मूढता, देव मूढता और गुरु मूढता ॥६९॥

आगे लोक मूढता का स्वरूप दिखाते हैं।

पत्थर के ढेरे करे, या गंगा स्नान।
अग्नि जले या गिरि गिरे, लोक मूढ़ता जान ॥७०॥

अर्थ—जो ससारी अज्ञानियो के देखा-देखी पाप कर्मो को तो छोडता नही किन्तु पत्थरो के ढेर मे पत्थर फेक कर पत्थरियाही देवी की पूजा मानता है, आत्म स्नान को धर्म जानता नही किन्तु गगा मे स्नान कर धर्म मानता है, इच्छाओ को जलाने मे धर्म

नही मानता, किन्तु अग्नि में जल जाने को धर्म मानता है अथवा मान से गिरने में धर्म नही मानता किन्तु पर्वत से गिर कर मर जाने मे धर्म मानता है, उसके लोक मूढ़ता होती है ।।७०।।

आगे कल्पना से देखा देखी का फल दिखाते है ।

गिरा ताड फल भू हली, समझ भजा खरगोश।
उसे देख सब पशु भजे, सिंह दिया संतोष ।।७१।।

अर्थ—कल्पना करिये कि एक ताडवृक्ष के समीप एक खरहा सो रहा था उस समय ताड़वृक्ष से एक फल टूटकर भूमि पर गिरा। उस फल के गिरने से अति शब्द हुआ 'और उस स्थान की भूमि भी हल गई जिससे वह खरहा प्राण छोडकर भागा। उसको भागते देख कर अन्य पशु भी भाग पडे । जब वे भागते २ एक पहाड की खोह के बीच टकराने लगे तब एक सिह को ज्ञात हुआ कि वे सब अभी मरे जाते है इनकी मुझे रक्षा करनी चाहिये । ऐसा विचार कर वह दहाड मार कर उनके सामने खडा हो गया जिसके भय से सब पशु खडे हो गये । जब वे खडे हो गये तब सिह ने कहा तुम क्यो भागे, तब उनमे से बैल बोला कि ये भगे तब मै भगा । इसी तरह अन्य से पूछा तो अन्य भी यही उत्तर देते गये इस पर सिह जिसको पूछता जावे उसको एक ओर करता जावे । ऐसा करते २ अत मे उस खरहा की बारी आई तो वह बोला कि भूकम्प हुआ इससे मै भगा। सिह ने कहा कि भूकम्प कहॉ हुआ तब खरहा बोला जहाँ मै सो रहा था वहॉ भूकम्प हुआ जब सिह ने पूछा तू कहॉ सो रहा था तब खरहा बोला वह स्थान बहुत पीछे रह गया इस पर सिह ने सब पशुओ से कहा कि तुम सब यहा खडे रहना मै वहॉ जाता हूँ जहॉ यह खरहा सो रहा था यदि तुम यहाँ से चले गये तो मै तुम सब को आज मार डालूगा यदि कही नही गये तो सब को अभयदान दे दूँगा। ऐसा कह कर वह खरहा को अपनी पीठ पर बैठा कर वहॉ

पहुँचा जहाॅ खरहा सो रहा था वहाँ पहुँचकर सिह ने विचार किया कि यहाँ तो भूकम्प के कोई चिन्ह नही है फिर क्या कारण से यह भगा ऐसा विचार करता हुआ इधर उधर देखा तो ताड के वृक्ष के नीचे तत्काल का गिरा हुआ ताड़ फल देखा उसे देखकर सिंह ने जान लिया कि इसके गिरने से इसको भूकम्प की प्रतीति हुई इसपर सिह उस फल को एक हाथ में ले और खरहा को पीठ पर बैठा कर तीन पैर से दौड लगाकर वहाॅ आया जहाॅ सब पशु खडे थे और उनसे कहा कि देखो भूकम्प कही नही हुआ। जहाॅ यह सो रहा था वहाॅ ताड के वृक्ष से यह फल गिरा इससे यह भाग पडा इसको देखकर तुम सब भाग पड़े यदि मैं आज यहाॅ न होता तो तुम सब इस पहाड की खोह मे टकरा कर मर जाते इसलिये तुम सबको चाहिये कि बिना विचारे अन्य के देखा देखी कुछ काम न किया करो ऐसी शिक्षा देकर सिंह अपने स्थान चला गया। जब बिना विचारे लौकिक कार्य नही होते तो अलौकिक कार्य कैसे सफल हो सकते है इसलिये देखा देखी लोक मूढत्ता को नही अपनाना चाहिए ॥७१॥

इक पैसे की हाडिया ठोक ठोक के लेय।
वैसे कीमती धर्म को बिन परखे गहि लेय ॥

आगे देव मूढता का स्वरूप दिखाते है।

वर इच्छा आशा सहित, राग द्वेष मल लीन।
देवों की पूजा करें, देव मूढ़ता चीन ॥७२॥

अर्थ—जो किसी मत्रादि की इच्छा रखकर अथवा धन सतति की कामना रखकर अथवा बिना किसी कामना के राग द्वेष से मेले देवो की पूजा करता है उसके देव मूढता होती है ॥७२॥

आगे कुदेव की पूजा से सोमाशूद्र को नरक दिखाते है।

धन इच्छा रख शूद्र इक, बैठे व्यंतर थान ।
सिर हिलाय लोगनि ठगे, भेद खुलें अपमान ।।७३।।

अर्थ—मालवदेश में धमकन नाम का एक ग्राम था उसमे सोमा नाम का एक शूद्र रहता था । एक दिन उसका पिता मर गया वह उसको अपना धरा हुआ धन नही वतला गया । इस चिंता में वह उस ग्राम के वाहर तालाव की पार पर एक वडा भारी वट का वृक्ष था उसके नीचे बैठा करता था और कहा करता था कि इस वृक्ष पर कोई देवता हो तो मेरे पिता का धरा हुआ धन कहाँ है वतादे । ऐसा कहते २ कई दिन वीत गये तो एक दिन उसको यह मिथ्या प्रतीति हुई कि देवता यह कहता है कि घर को खोद धन मिलेगा तव उसने घर खोदा किन्तु धन नही मिला तव उसने वट वृक्ष के नीचे वैठकर धन वतादे धन वतादे ऐसा कहना प्रारभ कर दिया तव उसको एक दिन यह प्रतीति हुई कि घर खोदा किन्तु वह घर तो नही खोदा जिसमें तेरा वाप वैठता था तव उसने वह भी खोदा किन्तु धन नही मिला । तव वह उसी तरह फिर कहने लगा तव उसको अन्य किसी स्थान की प्रतीति हुई । इस तरह उसने अपना सव घर खोद डाला किन्तु धन नही मिला इसके घर खोदने मे उसकी स्त्री बहुत अप्रसन्न होने लगी कारण उसको खुदी हुई जगह जैसी की तैसी करनी पड़ती थी इससे उसने घर खोदना वद कर दिया किन्तु वृक्ष के नीचे वैठना वद नही किया तो उसको एक दिन यह प्रतीत हुआ कि देवता मुझसे यह कह रहा है कि घर क्यो खोदता है घर मे जहाँ तेरा पिता वैठता था उस कोठे में जो पत्थर की दीवट लगी है उसको खेच ले तुझ को धन मिल जावेगा । तव उसने घर जाकर उस दीवट के पत्थर को खेचा तो उसके भीतर एक टाट मिल गई और उसमें धन मिल गया । धन पाकर उसने अपना घर बनवाया और उस वट के नीचे व्यतर देव की एक छोटी मढिया वनवाई इस पर ग्राम के लोगो ने पूछा कि तेरे पास इतना

धन कहाँ से आया तब उसने कहा कि तालवाले बाबा ने दिया इस पर किसी ने कहा कि मेरा पिता भी धन नही बतला गया तब उसने कहा कि तुम सोमवार को आओ मै देवता से तुम्हारे आशय को पूछूँगा यदि बतला देगा तो तुमसे कह दूँगा सो यह सोमवार को वहाँ बैठा और उसने कह दिया कि अपने घर के सामने वाले कोठा में धन है सो उसने जाकर खोदा तो धन मिल गया। उस तरह इस की बहुत ख्याति हो गई और वह प्रत्येक सोमवार को वहाँ बैठे और सिर हिलाय हिलायकर लोगो की जैसी कामना हो वैसा कल्पित उत्तर दे दिया करे सो जिसका भला हो जावे वह द्रव्य चढा जावे और जिसका भला न हो वह चुप होकर अपनें घर बैठ जावे। जब इस जाल का पता प्रमुख पुरुषो के कान तक पहुँचा तो उन्होने खोज कर उस मढिया को फोड़ डाला और उसको भगा दिया जिस से वह मर कर नरक का पात्र बना साराश यह है कि उसने अपने मिथ्या विचारो से एक कल्पित देव बना लिया वास्तव मे विचार किया जावे तो देव किसी के सिर नही आता न अदवा तदवा बकता है यह माया जाली जीव अपने मिथ्या विचारों को ही देवता बनाकर उसकी प्रसिद्धि कर देता है और धन तथा मान प्राप्त कर लेता है हॉ इतना अवश्य है कि चौथे काल मे किसी विशेष पुरुष पर देव प्रसन्न हो जाते थे तो देवोपुनीत सामिग्री दे जाते थे अथवा किसी धर्मात्मा के सकट मे सहायक बनकर धर्म की प्रभावना बढा जाते थे इसलिये भव्य जीवो को कभी किसी कुदेव की पूजा नही करनी चाहिये यदि परलोक सुधारने की वाछा हो तो श्री जिनेन्द्र देव की उपासना करनी चाहिये ॥७३॥

आगे गुरु मूढता का स्वरूप दिखाते है।

हिंसारंभ रु उपधि युत, लोक चक्र में लीन।
तिस गुरु की पूजा करें, गुरु मूढ़ता चीन ॥७४॥

अर्थ—जो धन धान्यादि परिग्रह रखने वाले का, हिंसा के काम खेती व्यापार करने कराने वाले का, चक्की चूल्हादि आरम्भ करने वाले का अथवा मन्त्रादि करने वाले कुगुरु का आदर-सत्कार करता है उसके गुरु मूढता होती है ।।७४।।

आगे कुगुरु की पूजा से दडक राजा को नरक दिखाते है ।

रानी के षड् यंत्र से, नृपति क्रोध आवेश ।
पेले सब मुनि एक ने, भस्म किया सब देश ।।७५।।

अर्थ—दंडकदेश के कर्णकुडल नगर मे दडकराजा राज्य करता था उसकी रानी दडियो के मार्ग को मानती थी। उसके कारण राजा भी उसी मार्ग को मानने लगा। एक दिन राजा ने नगर के बाहर ध्यानारूढ दिगम्बर मुनि देखे सो राजा ने उनके गले में मरे हुये सर्प को डाल दिया और अपने स्थान को चला आया। कई दिन के पश्चात् राजा उस मार्ग से फिर निकला उस समय मुनि के पास एक मनुष्य उनके गले से मरे सर्प को निकाल कर सेवा मे बैठा था तो राजा ने उस मनुष्य से पूछा कि इस मुनि के गले मे सर्प किसने किस समय निकाला तब उस मनुष्य ने राजा से कहा कि अभी मैने मुनि के गले से इस मरे हुये सर्प को निकाला। यह सुनकर राजा मुनि के चरणों को नमस्कार कर जैनी बन गया तब यह समाचार दडियो के मुह से रानी ने सुना और सुनकर मुनियों को मारने का उपाय सोचने लगी। सोचते-सोचते उसको उपाय ज्ञात हो गया और अपने गुरु से कहाकि तुम कोई मुनि बनकर मेरे महल मे आओ और मेरे से विकार चेष्टा करो तब उसनें वैसा ही किया जब राजा ने यह समाचार सुना तो उसने क्रोध के आवेश मे आकर मुनियो को घानी में पिलवाने की आज्ञा दे दी। सो आचार्यसहित जितने सघ में मुनि थे उन सबको घानी में पिलवा दिया। संघ में से एक मुनि वहाँ नही थे वे बचे वे सघ मे

आ रहे थे तो मार्ग मे एक मनुष्य ने उनको रोका और प्रार्थना की कि आप वहाँ न जाइये कारण राजा ने सब मुनियो को घानी मे पिलवा दिया है और आपको देखकर आपको भी घानी मे पिलवा देगा। इस समाचार को सुनकर उस मुनि को क्रोध उत्पन्न हुआ और तत्काल उनके बाये भुजा से तैजस पुतला निकल और ९-१२ योजन भूमि अग्निमयी हो गई और उसमे राजा, प्रजा और दडी आदि सब भस्म हो गये। राजा मरकर नरक गया वहाँ से अनेक कुयोनियो में घोर दुःख सहनकर यह गृद्धपक्षी हुआ है ऐसा सुगुप्ति चारणऋद्धिमुनि ने श्री रामचन्द्र जी से दडक वन मे कहा इसलिये कुगुरुओ की सेवा कभी नही करना चाहिये ॥७५॥

आगे षट अनायतन का स्वरूप दिखाते है।

कुगुरु कुदेव कुशास्त्र अरु, इनके पूजक तीन।
विनय वन्दना जो करे, सो अनायतन लीन ॥७६॥

अर्थ—जो कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु अथवा इन तीनो के पूजको की विनय और वन्दनादि करता है उसके षट अनायतन होते हैं ॥७६॥

आगे प्रसंगवश प्रथम निश्चय मिथ्यात्व का स्वरूप दिखाते है।

सात प्रकृति के उदय से, होवें जैसे भाव।
सो निश्चय मिथ्यात्व है, कहें केवली राव ॥७७॥

अर्थ—सात प्रकृति (मिथ्यात्व ३ अनतानुबधी ४) के उदय से जैसे जीव के भाव (तन मे आपा माननादि) होते है सो निश्चय नय से मिथ्यात्व कहलाता है, यहाँ व्यवहार प्रकरण चल रहा है इस कारण शेष स्वरूप अन्य ग्रथो से जानना चाहिये ॥७७॥

आगे व्यवहार मिथ्यात्व का स्वरूप दिखाते हैं।

कुगुरु कुदेव कुशास्त्र की, पूजा करे कराय ।
सो मिथ्यात्वी जीव है, व्यवहारी नय गाय ॥७८॥

अर्थ—जो कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओ की पूजा करता है अथवा दूसरो द्वारा उनकी पूजा कराता है वह पुरुष व्यवहार नय से मिथ्यादृष्टि कहलाता है उसकी वह क्रिया व्यवहार नय से मिथ्यात्व कहलाती है ॥७८॥

आगे कुदेव का स्वरूप दिखाते है ।

अतिशय छै चालिस न इक, दोष अठारह सेव ।
गर्भादिक उत्सव न इक, सो सब देव कुदेव ॥७९॥

अर्थ—जो अठारह दोषो मे से एक भी दोष सहित हो, छियालीस अतिशयो में से एक भी अतिशय न हो, और जिनके गर्भादि उत्सवो (कल्याण) मे से एक भी उत्सव न भया हो सो सब देव कुदेव है ॥७९॥

आगे कुशास्त्र का स्वरूप दिखाते है ।

जो न कहा सर्वज्ञ का, पूर्वापर अति छेद ।
और असंभव दोषयुत, सो सब वेद कुवेद ॥८०॥

अर्थ—जो सर्वज्ञ प्रणीत न हो, जो पूर्वापर (कही हिसा कही दया पुष्ट) विरोध सहित हो और असभव (तीर्थकर के रोगादि का कथन) दोषो से भरे हो वे सब शास्त्र कुशास्त्र है ॥८०॥

आगे कुगुरु का स्वरूप दिखाते है ।

धरे न उत्तर मूल गुण, पंचाचार अबाध ।
जग प्रपंच में फसे हों, सो सब साध कुसाध ॥८१॥

अर्थ—जिन्होने निर्दोष मूलगुण, उत्तरगुण और पचाचार धारण नही किये हो और उलटे जग प्रपच में लगे हों वे सब साधु कुसाधु है ॥८१॥

आगे अन्याय का स्वरूप दिखाते हैं ।

जुआ माँस मदिरा तथा, चोरी और शिकार ।
पर नारी वेश्या गमन, सातों व्यसन निहार ॥८२॥

अर्थ—जुआ (जिसमे हानि, लाभ का प्रश्न हो) मास, मदिरा, चोरी, शिकार (सकल्पी हिसा), परनारी और वेश्या-सेवन ये सात व्यसन (अन्याय) है ॥८२॥

आगे जुआ और जुआ समान का स्वरूप दिखाते है ।

हार जीत जिस खेल में, सो सब जुआ बखान ।
सट्टा दड़ा रु लाटरी, सो सब जुआ समान ॥८३॥

अर्थ—जिस खेल मे जीत और हार होती है सो सब खेल जुआ हैं, सट्टा, दडा और लाटरी मे पैसा लगाना ये सब जुआ समान हैं, इनके त्याग बिना दर्शन प्रतिमा नही होती ॥८३॥

आगे जुआ मे प्रसिद्ध पाडवो को दिखाते है ।

जुआ खेलकर पांडवा, हार गये धन धाम ।
दुःख सहे वनवन फिरे, ऐसा जुआ निकाम ॥८४॥

अर्थ—जगत प्रसिद्ध युधिष्ठिरादि पाच पाडव हस्तिनापुर के राजा थे । उन्होने दुर्योधनादि सौ भाइयो के साथ जुआ खेला । जुआ मे वे धन, धाम, राजपाट और द्रोपदी को भी हार चुके थे । जिस जुआ के कारण उनको वन-वन फिरना पडा और नाना प्रकार के दु ख सहने पडे इसलिये जुआ कभी नही खेलना चाहिये ॥८४॥

आगे मास और मास समान का स्वरूप दिखाते है ।

त्रस पशु या मानुष हते, जो उपजे सो मांस ।
उस समान वह वस्तु है, जिसमें मांस शतांश ।।८५।।

अर्थ—जो दो इन्द्रियादि पशु और मनुष्यो को मारने से उपजता है उसको मास कहते है और जिस किसी वस्तु मे वह मास किंचित् मात्र भी मिल जाता है वह वस्तु मास के समान मानी जाती है इनके त्याग विना दर्शन प्रतिमा नही होती ।।८५।।

आगे मास व्यसन मे प्रसिद्ध वक राजा को दिखाते है ।

मांस खाय वकराय ने, निंदा लही अपार ।
राज पाट सब खोयकर, पहुँचा नरक मँझार ।।८६।।

अर्थ—अजुध्यापुरी मे वक नाम का एक राजा हुआ था । वह रसोइया के कारण मास खाना सीख गया । वह रसोइया वच्चो को वुलाकर लड्डू वाटा करता था और जाते समय जो वालक पीछे रह जाता था उसे पकडकर मार डालता था और उसका मास राजा को खिलाता था । जब नगरवासियो को यह समाचार मिला तो उन्होने उसके पुत्र को राज दे और उसे निकाल दिया । जिसके कारण वह वहुत दुखी हुआ और मर कर नरक गया ।।८६।।

आगे मदिरा और मदिरा समान का स्वरूप दिखाते है ।

निपुण निंद्य दुर्गंध मय, मादक अशुचि शराब ।
आशव अंग्रेजी दवा, उस ही तुल्य खराब ।।८७।।

अर्थ—ज्ञानियो द्वारा निंदनीय, दुर्गंध से भरी मादक (नशैली) और अपवित्र शराब होती है । आसव और अग्रेजी दवाइयाँ ये सब

उस समान हैं जो इनको त्यागता नही उसके दर्शन प्रतिमा नही होती ॥८७॥

आगे मदिरापान में प्रसिद्ध यादवो को दिखाते है।

जादव मदिरापान कर, दीपायन को छेड़ ।
भस्म कराई द्वारिका, कृष्ण मृत्यु ने वेड़ ॥८८॥

अर्थ—जगत प्रसिद्ध बात है कि द्वारिका नगरी मे ५६ कोटि जादव रहते थे। उनके पुत्रो ने मदिरापान कर दीपायन मुनि को घेर लिया और उन पर पत्थर फेके तथा दुर्वचन कहे। इससे मुनि को क्रोध आ गया जिससे द्वारिका जल कर भस्म हो गई और जरद्कुमार के हाथ से श्रीकृष्ण जी की मृत्यु हुई। देखो मदिरा-पान करने से कितनी हानि हुई ॥८८॥

आगे चोरी और चोरी समान का स्वरूप दिखाते है।

आंख बचा पर धन हरें, या लूटे सो चोर ।
वनिज झूँठ छलका करें, सो चोरनि सिरमौर ॥८९॥

अर्थ—जो आँख वचाकर दूसरे का धन हरता है अथवा जवरन लूट लेता है सो सब चोरी है और जो व्यापार झूठ कपट से करता है सो सब चोरी समान है। ऐसा करने वाले के दर्शन प्रतिमा नही होती ॥८९॥

आगे चोरी मे प्रसिद्ध दृढ़ सूर्य चोर को दिखाते है।

चोर भगा दृढ़ सूर्य जब, रानी हार चुराय ।
नृप दूतों ने पकड़कर, सूली दिया चढ़ाय ॥९०॥

अर्थ—दृढ सूर्य उज्जैनी नगरी मे रहता था। वहाँ का राजा धनपाल था। उसकी रानी का नाम धनवती था। धनवती एक

दिन बसत की शोभा देखने वन मे गई। उसके गले का हार वसतसेना वेश्या ने देख लिया। हार की प्राप्ति के लिए बसतसेना ने दृढ़सूर्य चोर को प्रेरित किया। जब वह रानी के गले से हार चुराकर भागने लगा तो राजदूतो ने उसे पकड़कर राजा के सामने कर दिया राजा ने उसे सूली पर चढवा दिया इसलिये परधन हरण किसी भी प्रकार नही करना चाहिये ।।९०।।

आगे आखेट और आखेट समान का स्वरूप दिखाते हैं।

पशु पक्षी जलचरनि को, हते सु समझ शिकार।
धन के हित आरंभ बहु, सो उससे भी भार ।।९१।।

अर्थ—जो अस्त्र शस्त्रादि किसी उपाय से पशु, पक्षी अथवा जलचर जीवो को मारता है। सो सब उसकी क्रिया आखेट है और जो धन के लिये अनेक प्रकार के यत्नों द्वारा बहु आरभ करता-कराता है सो किसी दृष्टि से आखेट से भी अधिक पाप है कारण आखेट मे एक ही जीव मरता है और बहु आरभ में बहुत स्थावर और त्रस-कार्य के जीव मरते है इस कारण वहु आरभ से धन संचय नही करना चाहिये ऐसा करने वाले के दर्शन प्रतिमा नही होती ।।९१।।

आगे आखेट मे प्रसिद्ध ब्रह्मदत्त राजा की कथा दिखाते है।

ब्रह्मदत्त आखेट में, भया प्रसिद्ध अपार।
कुष्ठ व्याधि से मरण कर, लहानरक दुख भार ।।९२।।

अर्थ—ब्रह्मदत्त उज्जैनी नगरी का राजा था। वह नित्यप्रति आखेट किया करता था। एक दिन वह आखेट को निकला तो उसे एक मुनि के दर्शन हुए उसके कारण उस दिन उसे आखेट प्राप्त नही हुआ। इससे वह बहुत दुखी हुआ। इसी तरह दूसरे तथा तीसरे दिन भी वह दुखी हुआ जिससे क्रोधित होकर वह मुनिराज

के प्रतिदिन बैठने की शिला के नीचे गुप्त रीति से ईंधन और अग्नि का प्रबन्ध कर चला आया। जब मुनिराज आहार से आये और प्रतिदिन की भाँति ध्यान करने लग गये तो अग्नि धीरे-धीरे प्रज्वलित हुई और मुनि के शरीर को जला दिया। जिसके फल-स्वरूप राजा को कुष्ठ रोग हो गया और बड़ी वेदना से मरकर वह सातवें नरक गया इसलिये जीवो पर दयाभाव रखना चाहिये ॥९२॥

आगे परनारी और परनारी के समान का स्वरूप दिखाते है।

स्व तिय न क्वारी व्याह बिन, व्याही हैं परनार।
अन्य चेष्टा जो करे, सो सब पापी जार ॥९३॥
दिन में निज पर नारि सम, उसी तरह दिन पर्व।
सुता शूद्र कुलहीन द्विज, बरें जाय कुल गर्व ॥९४॥

अर्थ—अनविवाही स्त्री बड़ी हो अथवा छोटी हो उसके साथ विवाह किये विना वह निजनारी नही होती और विवाही स्त्री विधवा हो अथवा सधवा हो सो सब परनारी है उनको जो मनुष्य कुदृष्टि से देखता है वह पापी है अन्य कुचेष्टा करता है वह भी पापी है, दिन के उदय में अथवा पर्व के दिनो मे निजनारी भी परनारी समान है शूद्र की लडकी के साथ अथवा कुलहीन द्विज की लडकी के साथ शादी करता है वह अपने कुल का गर्व छोड देता है और जातिच्युत होता है ऐसा करने वाले के दर्शन प्रतिमा नही होती ॥९३-९४॥

आगे परनारी मे प्रसिद्ध रावण को दिखाते है।

परनारी को हरण कर, रावण से बलवान।
राजपाट सब खोयकर, लहा नरक स्थान ॥९५॥

अर्थ—रावण आठवाँ प्रतिनारायण हुआ था। उसके अठारह हजार रानियाँ थी। किन्तु उसने कामाध होकर श्री रामचन्द्र जी की स्त्री सती सीता को कपट से हर लिया। यह समाचार जब श्रीराम ने सुग्रीव के द्वारा सुना तब उन्होने लका पर चढाई कर, रावण से युद्ध किया जिसमे रावण के अनेक योद्धा मारे गये और लका जैसी राजधानी को खोकर अत मे आप भी मारा गया जिसके फलस्वरूप तृतीय नरक मे दु ख भोगना पडा ॥९५॥

आगे वेश्या और वेश्या समान का स्वरूप दिखाते है।

वेश्या नारि न किसी की, धन दे सो भरतार।
नृत्यकारिणी वेड़िनी, सो वेश्या उनहार ॥९६॥

अर्थ—जो पैसा देता है उसकी ही उतने समय तक जो स्त्री बन जाती है उसको वेश्या कहते है और नृत्यकारिणी और वेडनी भी वेश्या के बराबर है इनको सेवने वालो के दर्शन प्रतिमा नही होती ॥९६॥

आगे वेश्या व्यसन मे प्रसिद्ध चारुदत्त को दिखाते है।

सेवन कर वेश्या व्यसन, चारुदत्त धनवान।
सर्वद्रव्य का हरण कर, पटका विष्टा थान ॥९७॥

अर्थ—चम्पापुरी का एक चारुदत्त नाम का बडा धर्मात्मा सेठ था। वह रातदिन धर्मकार्यो मे लगा रहता था और अपनी स्त्री के पास तक नही आता था। यह बात जब उसकी मा ने सुनी तो उसने अपने देवर से कहा। तब वह वेश्या के घर चारुदत्त को ले गया। वहाँ चारुदत्त धर्म को भूल वेश्या का दास बन गया और अपने पिता के बुलाने पर भी घर न आया। जिससे विरक्त होकर चारुदत्त का पिता मुनि हो गया। जब चारुदत्त का सब धन वेश्या

ने ले लिया तब उसको भगाने के लिए भिष्टा के स्थान मे ढकेल दिया ॥९७॥

आगे अभक्ष का स्वरूप दिखाते है।

त्रस घात जु बहुघात अरु, मादक और अनिष्ट।
अनुपसेव्य आहार सब, भक्षण योग्य न इष्ट ॥९८॥

अर्थ—त्रसघात, बहुघात, मादक, अनिष्ट और अनुपसेव्य ये सब अभक्ष्य है ॥९८॥

आगे त्रसघात का स्वरूप दिखाते हैं।

त्रस जीवनि के घात से, जो उपजे आहार।
सो भोजन त्रसघात है, भक्षे दया न लार ॥९९॥

अर्थ—जो त्रस (दो इन्द्रियादि) जीवो को मार कर भोजन बनता है वह त्रसघात आहार कहलाता है। उसको जो जीव भक्षण करते है उनके हृदय मे दया रूपी धर्म नही रहता ॥९९॥

आगे बहुघात के भेद दिखाते है।

सूखे हरे पदार्थ इक, हरे और अनसोध।
सूखे द्विदल रु भक्ष्य कभि, बहूघात छै रोध ॥१००

अर्थ—बहुघात पदार्थ ६ प्रकार के होते है सूखे हरे, हरे, अनसोधे, सूखे, द्विदल और भक्ष्य भी कभी अभक्ष्य है ॥१००॥

आगे जो सूखे हरे दोनो अभक्ष्य है उन्हे दिखाते है।

जो न कन्द सूखे तुरत, आलू वत् जो कोय।
अरु सीधी भू जाय जड़, मूली वत् जो होय ॥१०१

बहुबीजा अनजान फल, बैंगन बडफल मान ।
बेर दूध फल पंचफल, सूखे हरे अखान ॥१०२

अर्थ—आलू आदि देर से सूखने वाले कन्द, मूली आदि सीधी पृथ्वी मे जाने वाली जड़, जिसमे बीजो के घर न हो ऐसे पपीतादि बहूबीजाफल, अज्ञातफल, बैगन, बडफल, बेर, दूधफल और पच उदम्बरफल ये सब सूखे और हरे दोनो प्रकार के अभक्ष्य है इनके खाने से बहुत स्थावर काय के जीवो की हिसा होती है ॥१०१-१०२॥

आगे जो केवल हरे ही अभक्ष्य है उनको दिखाते है ।

शीघ्र कन्द जो सूखते, अदरख वत् जो कोय ।
अरु तिरछी भू जाय जड़, श्वेतमूसली जोय ॥१०३
जामुन छिलका गलन फल, भिन्डी चेंप जु दार ।
सर्व फूल लघु पत्त फल, वर्षापत्र सँभार ॥१०४॥
दूध पत्त दलदार पत, रोम खार बड़पात ।
चेंपदार युत पत्र लख, हरे न ज्ञानी खात ॥१०५

अर्थ—अदरख आदि शीघ्र सूखने वाले कद, श्वेतमूसली आदि तिरछी पृथ्वी मे जाने वाली जड, जामुन आदि छिलका गलनफल भिन्डी आदि चेपदारफल सर्वफूल, तुच्छफल, तुच्छपत्त, वर्षा ऋतु मे सर्वपत्र, दूधपत्त (आकादिपत्त), दलदारपत्त (पानादिपत्त), रोमपत्त (पोदीनादिपत्त), खारपत्त (चनादि के पत्त), बडेपत्त (केल, अरवी आदि के पत्त) चेपदारपत्त (गवारपाठादि) पत्त ये सब हरे अभक्ष्य हैं । इनके खाने से बहुत स्थावर काय के जीवो की हिंसा होती है ॥१०३-१०५॥

आगे शेष हरे पदार्थ अनसोधे अभक्ष्य दिखाते है ।

सर्व बीज अरु शेषफल, पत्ता शेष पिछान ।
सूखे हरे सुभक्ष्य हैं, अनसोधे अनखान ॥१०६॥

अर्थ—सर्व बीज, शेषफल और शेष पत्र सूखे और हरे दोनों प्रकार के सोध लेने पर भक्ष्य है बिना सोधे वे अभक्ष्य है ।।१०६।।

आगे जो सूखे पदार्थ अभक्ष्य है उनको दिखाते है।

मधु मक्खन विष चलित रस, मट्टि जलेब अचार।
इक सोंधे बिन सब नमक, भक्ष्य न बर्फ तुषार ॥१०७

अर्थ—मधु, मक्खन, विप, चलितरस, मट्टी, जलेबी, अचार, सोधे नमक बिना सब नमक, वर्फ, तुषार, ये सब सूखे भी अभक्ष्य हैं ।।१०७।।

आगे द्विदल को अभक्ष्य दिखाते है ।

दही छाछ कच्चा पका, द्विदल अनाज मिलाय।
अथवा उसमें गुड़ मिला, भक्ष्य विवेक नशाय ॥१०८

अर्थ—बिना गर्म किये हुये दूध का दही और छाछ स्वभाव से ही अभक्ष्य है उसमे द्विदल का प्रश्न ही नही उठता और गर्म किया हुआ दूध का दही और छाछ भक्ष्य है लेकिन उसमें द्विदल (चना, मूगादि अनाज) पदार्थ मिलाने से अथवा गुड मिला लेने से अभक्ष्य हो जाता है उन दोनो के खाने से विवेक नही रहता इस कारण नही खाना चाहिये ।।१०८।।

आगे किसी कारण से किसी भक्ष्य को भी अभक्ष्य दिखाते हैं ।

निशभोजन अन्छान जल, शूद्र दिया कुछ दान।
मार्ग चला कच्चा अशन, भक्ष्य हु सर्व अखान ॥१०९

अर्थ—रात्रि भोजन, अनछान जल, शुद्रअर्पित धान्य और मार्ग चला कच्चा भोजन भक्ष्य होने पर भी अभक्ष्य है ॥१०९॥

आगे पर्व के दिनो में भक्ष्यहरी को भी अभक्ष्य दिखाते हैं।

चतुर्दशी और अष्टमी, दशलक्षणि अष्टान।
भक्ष्य हरी प्राशुक करी, व्रतधर अर्थ अखान ॥११०

अर्थ—अष्टमी चतुर्दशी, दशलक्षणी पर्व और अष्टानिका पर्व के दिनों मे भक्ष्य हरी प्राशुक करके भी नही खाना चाहिये। कारण इन दिनो मे हिसा और आरभ करना वर्जित है हरी के खाने से हरी के आश्रय के जीवो की हिसा होती है और सूखे पदार्थ के खाने से केवल आरभ ही होता है जो पुरुष इन दिनो मे आहार करता है उसको वह आरभ करना अनिवार्य है क्योकि वह उपवास नही कर सकता ॥११०॥

आगे हरी के आश्रय जीव दिखाते है।

वृक्ष भिन्न जो शाकफल, जब तक सूख न जाय।
आश्रय जिय उनमें बसें, सूखत जीव नशाय ॥१११

अर्थ—जो वृक्ष से भिन्न कच्चे अथवा पक्के शाक और फल हो जाते है वे जबतक सूख नही जाते तबतक उनमे आश्रय जीव रहते है, वृक्ष जीव उनमें नही रहता, सूख जाने पर उनमे आश्रय जीव भी नही रहते जैसे अमचूरादि ॥१११॥

आगे मादक पदार्थ को अभक्ष्य दिखाते है।

जिनके खायें पीयें से, आवे नशा जरूर ।
और बुद्धि विपरीत हो, सो मादक भरपूर ॥११२

अर्थ—जिन पदार्थो के खाने से अथवा पीने से नशा आ जाता है और वुद्धि विपरीत हो जाती है सो सब मादक (नशीला) पदार्थ अभक्ष्य है इनको सेवन नही करना चाहिये ॥११२॥

आगे अनिप्ट पदार्थो को अभक्ष्य दिखाते है ।

जो न इष्ट निज को पड़े, सो अनिष्ट कहलाय ।
पित्त प्रकृति वस्तू गरम, खात व्यथा वढ़ जाय ॥११३

अर्थ—जो अपनी प्रकृति को इष्ट न पडता हो उसको अनिप्ट पदार्थ कहते है जैसे पित्त की प्रकृति मे गर्म भोजन तुरन्त व्यथा (तृष्णा) पेदा कर देता है इस कारण प्रकृति के विरुद्ध भोजन नही करना चाहिये ॥११३॥

आगे अनुपसेव्य को अभक्ष्य दिखाते है ।

जिसे न भक्षें आर्य जन, अनुपसेव्य वह थाय ।
जैसे विस्कुट आदि को, आमिष भक्षी खाय ॥११४

अर्थ—जिस वस्तु को आर्य पुरुप नही खाते वह अनुपसेव्य है जैसे बिस्कुट आदि आर्य पुरुष नही खाते मास भक्षी खाते है इस कारण वे अनुपसेव्य अभक्ष्य है उनको शुद्धतापूर्वक घर पर भी वनाकर नही खाना चाहिये । भक्ष्याहार को भी कुर्सी, पलगादि पर वैठकर नही खाना चाहिये और पट्टा पर वैठकर भी चमची, छुरी और चीमटी से उठाकर मूह में नही देना चाहिये न विदेशी पोपाख पहनना चाहिये ॥११४॥

आगे भक्ष्य पदार्थो को दिखाते हैं ।

भक्ष्य अन्न सब अनघुने, कुआ रु झिरना नीर।
बहू जिवानी किया हो, लकड़ी अनघुन मीर ।।११५
भक्ष्य दूध गो भेंस का, दश पन्द्रह दिन ढात ।
बकरी भेड़ न भक्ष्य पय, दुहत बाल झड़ जात ।।११६
दूध न्हाय जैनी दुहे, अग्नि धरे झट छान ।
सूखा जामन डालकर, दही जमावे मान ।।११७
उसको मथ कर घी तुरत, अग्नी पर धर देहि ।
दूध दही घी छाछ को, इस ढंग श्रावक लेहि ।।११८

अर्थ—अनघुने सब अन्न भक्ष्य है, जिवानी किया हुआ कुआ और झिरना (सोता) का जल भक्ष्य है, अनघुनी लकडी जलाने योग्य है, प्रसव के १० दिन पश्चात् गाय का और १५ दिन पश्चात् भैंस का दूध भक्ष्य है, भेड और बकरी का दूध अभक्ष्य है कारण उनको दूहने पर दूध मे बाल झड जाते है, उस भक्ष्य दूध को द्विज जैनी स्नान कर दुहे और दुहकर तुरन्त छान ले तो दो घडी तक भक्ष्य है पश्चात् अग्नि पर गर्म करने रख दिया जाता है गर्म होने पर सूखे जामन से उसे जमा दिया जाता है पश्चात् उस जमे हुए दूध (दही) को मथकर जो घी (लोनी) निकले उसको अग्नि पर रख कर घी बना लिया जाता है। इस रीति से किया हुआ दूध, दही घी और छाछ भक्ष्य माना जाता है ।।११५-११८।।

आगे भक्ष्य पदार्थों के भक्षण की अवधि दिखाते हैं ।

एक वर्ष घी तेल थिति, दूध आदि उस रोज।
अंतर मुहुरत छना जल, तप्त पहर अठ खोज ।।११९

कुटा मसाला मिष्ट रस, वर्षा में दिन सात ।
गर्मी पन्द्रह शीत ऋतु, एक मास तक खात ॥१२०
पिसा नाज वर्षा विषें, तीन दिवस तक खान ।
गर्मी में दिन पाँच तक, शीत सात दिन जान ॥१२१
अध दिन सब दिन दोय दिन, कच्चा पर पकवान ।
अंतर मुहुरत नमक पिस, मिला अशन उस थान ॥१२२

अर्थ–घी और तेल की एक वर्ष तक, गर्म किये हुये दूध, दही और छाछ की उस दिन तक, छने कच्चे दूध की दो घडी तक, छने जल की अन्तर्मूहूर्त तक, बहुत तपाये जल की आठ पहर तक, कुटा मसाला और बूरा, बतासादि की वर्षा ऋतु मे ७ दिन, ग्रीष्म ऋतु मे १५ दिन और शीत ऋतु में एक माह तक, पिसा हुआ अनाज (आटा, रवा, दलिया) की वर्षा मे ३ दिन, ग्रीष्म मे ५ दिन और शीत ऋतु मे ७ दिन तक। कच्चा भोजन (पानी मे पकाया) की दोपहर, पक्के भोजन (घी तेल मे पका हो) की चार पहर तक, पकवान (घी मे पककर बूरे की चासनी चढी हो) की दूसरे दिन तक, पिसे नमक की अन्तर्मूहूर्त तक और भोजन मे मिले हुये नमक की उस भोजन की मर्यादा तक, मर्यादा है इसप्रकार और भी समझ लेना चाहिये मसाला तुरत पीसकर काम मे लाना अति उत्तम है ॥ ११९-१२२॥

आगे विवेक पूर्वक पट आरभो का स्वरूप दिखाते है ।

चक्की चूला ओखली, झाड़ू जल में यत्न ।
वनिज विषें नहिं झूंठ छल, निंद्य न प्राणी हत्न॥ १२३

अर्थ–जो जीवो को देखकर चक्की चलाता है, चूल्हा जलाता

है, झाड़ देता है बुहारी फेरता है। पानी खेंचता है। व्यापार मे झूठ नही बोलता, कपट नही करता, जीवो की हिसा नही करता और निद्य व्यापार (जूता वेचना, कपडा धोनादि) नही करता उसके पट आरभ विवेक पूर्वक कहे जाते है ॥१२३॥

आगे दर्शन प्रतिमा वाले गुण दिखाते है।

निरारंभ सब कार्य कर, मौनी बहु वच बोल।
साहु पराया छीन धन, शीला बहु तिय ओल ॥१२४
अपरि-ग्रही बहु विभव रख, निराहार भर पेट।
इस प्रकार के और गुण, जानो दर्शन भेट ॥१२५

अर्थ—दर्शन प्रतिमा वाला सब कार्य करता हुआ भी निरारभ है, वहु वचन वोलता हुआ भी मौनी है, किसी का धन छीन कर भी शाहू है, वहुत स्त्री रख कर भी शीलवान है, वहुत विभव (धन) रखकर भी अपरिग्रही है और भर पेट खा लेने पर भी निराहारी है। इस प्रकार के और भी गुण दर्शन प्रतिमा धर कर अथवा दर्शन प्रतिमा वाले की सगति करके जान लेना चाहिये ॥ १२४-१२५ ॥

आगे उपरोक्त गुणो को स्पष्ट दिखाते है।

निरारंभ चर्या यतन, मौनी पर हित बोल।
साहू शठ का छीन धन, शीला निज तिय ओल ॥१२६
अपरि-ग्रही रख न्याय धन, निराहार खा भक्ष्य।
इस प्रकार के और गुण, लख दर्शन की पक्ष्य ॥१२७

अर्थ—दर्शन प्रतिमा वाले की चर्य्या यत्नपूर्वक होने के कारण सब कार्य करता हुआ भी निरारभ है, परहित के लिये बोलता है।

इस कारण मौनी है, पापों को रोकने के लिये पापियों का धन छीनता है इस कारण साहु है, परनारी त्यागकर अनेक निज नारियों को भोगता है इस कारण शीलवान है, अन्याय के धन को त्यागकर न्याय के धन को रखता है इस कारण अपरिग्रही है और अभक्ष्य को त्याग कर भक्ष्य पदार्थ का भक्षण करता है इसकारण निराहारी है। इस प्रकार के और भी गुण दर्शन प्रतिमा धर कर अथवा दर्शन प्रतिमा वाले की सगति करके जान लेना चाहिये ।।१२६-१२७।।

आगे दर्शन प्रतिमा के अतीचार दिखाते हैं ।

शंका, कांक्षा ग्लानि अरु, निंदा दर्शन धार ।
मिथ्यात्वी की प्रशंसा, दर्शन पद अतिचार ।।१२८

अर्थ—शका, काक्षा, ग्लानि, दर्शन प्रतिमा वाले पुरुप की निदा और मिथ्यादृष्टि की प्रशसा ये पाँच दर्शन प्रतिमा के अतीचार है ।।१२८।।

दर्शन प्रतिमाधिकार समाप्त

— ० —

आगे व्रत प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है ।

पंच अणुव्रत तीन गुण, अरु शिक्षा व्रत चार ।
जो पाले अतिचार बिन, सो व्रत प्रतिमा धार ।।१२९

अर्थ—जो पाँच अणुव्रतो को, तीन गुणव्रतो को और चार शिक्षा व्रतो को निरतिचार पालता है उसके व्रत नाम की दूसरी प्रतिमा होती है ।।१२९।।

आगे पच अणुव्रतो के नाम और स्वरूप दिखाते है ।

हिंसा झूंठ रु तस्करी, अब्रह्म परि-ग्रह पाँच ।
योग्य थूल अघ जो तजे, सो अणु-व्रत धर साँच ।।१३०

अर्थ—जो पुरुष योग्यस्थूलहिसा (विरोधीहिसा) योग्यस्थूल-झूंठ (दुखकरवचन) योग्यस्थूलचोरी (बिना स्वामी का मिला धन) योग्यस्थूल-कुशील (अनेक-धर्म-पत्नी) और योग्य-स्थूल-परिग्रह (राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी) का सर्वथा त्याग कर देता है उसके पच अणुव्रत होते है ।।१३०।।

आगे अहिसाणुव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

मन वच तन कृत कारिता, मोदन से त्रस काय ।
जो विरोध से नहिं हने, अहिंसाणुव्रत गाय ।।१३१

अर्थ—जो पुरुष त्रस जीवो की विरोधी हिसा को मन, वचन, कार्य, कृत, कारित और अनुमोदन से सर्वथा त्याग देता है उसके अहिसाणुव्रत होता है ।।१३१।।

आगे अहिसाणुव्रत के अतीचार दिखाते है ।

बांधे छेदे दुख करे, अल्प अशन बहु भार ।
अहिंसाणु व्रत के कहे, ये पांचों अतिचार ।।१३२

अर्थ—जीवो को असाता पहुँचाने के लिए रस्सी आदि से बॉधना, नाकादि छेदना, लकडी आदि से धमकाना, आहार पानी थोड़ा देना और उनकी शक्ति से अधिक भार वहन करना ये पाँच अहिसाणुव्रत के अतीचार है ।।१३२।।

आगे अहिसाणुव्रत मे प्रसिद्ध यमपाल को दिखाते है ।

अहिंसाणुव्रत अंश को, पालन कर यमपाल ।
जगत प्रशंसा पायकर, भया स्वर्ग का लाल ।।१३३

अर्थ–काशी नगरी में एक यमपाल चाडाल रहता था। एक दिन वहाँ के राजा पाकशाशन ने अष्टानिका के दिनों मे मेढा मारने के अपराध मे धर्म नाम के सेठ पुत्र को फांसी का दड दिया था। जव चाडाल को बुलाया तो वह पहिले ही घर मे छुप गया। राजदूतों के पूछने पर उसकी स्त्री ने कह दिया कि वह गांव को चला गया है। जिस पर राजदूतो ने कहा, "कि वह बडा अभागा है कारण आज उसको सेठ के पुत्र के सब वस्त्र और आभूषण मिलते।" ऐसे लालच के वचन सुनकर स्त्री ने हाथ का सकेत घर की ओर कर दिया। तब राजदूतो ने उसको पकडकर राजा के सामने कर दिया। तव चाडाल ने राजा से कहा कि "चौदस के दिन मैं फाँसी नही लगा सकता।" मेरे व्रत है इस पर राजा ने क्रोधित होकर दोनो को गहरे जलाशय मे पटकवा दिया। सेठ के पुत्र को तो जलचर जीवों ने तुरन्त खा लिया और चांडाल को देवो ने जल के बाहर कर दिया। तब राजा ने उसे फिर पटकवाया और

नोट —व्यवहार नय मे अयोग्यस्थूलहिसा (सकलपी हिसा) झूठ (परप्राणहरवचन) चोरी (परधनहरण) कुशील (परनारीसेवन) और परिग्रह (विषयपोपकपरिग्रह) के त्याग देने पर दर्शनप्रतिमा (व्यवहार सम्यक्दर्शन) होती है। योग्यस्थूलहिसा (विरोधीहिसा) झूठ (परदुखकरवचन) चोरी (विना स्वामी का मिला धन ग्रहण) कुशील (अनेक धर्मपत्नी) और परिग्रह (राज्यप्रवन्धसवधी) के त्याग देने पर व्यवहार व्रतप्रतिमा होती है। सूक्ष्महिमा (उद्योगी हिसा) झूठ (व्यापार के वचन) चोरी (व्यापारलाभग्रहण) कुशील (एक धर्मपत्नी) और परिग्रह (जीवननिर्वाहसवधी) के त्याग देने पर व्यवहारमहाव्रत होता है और सूक्ष्मतरहिसा (आरभी हिसा अर्थात् मुनिचर्या) झूठ (शाब्दिक वचन) चोरी (अशनोपकरणग्रहण) कुशील (प्रमत्तदशा) और परिग्रह (उपकरणसवधी) के त्याग देने पर व्यवहारसमाधि होती है। इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म हिसादिक पाँच पापो के त्याग का अनुक्रम है जो कि पुरुपार्थ के आधीन है।

वह फिर भी जल के बाहर आ गया। इस पर राजा नें तथा सब लोगों ने उसकी बहुत प्रशसा की। अन्त में वह स्वर्ग मे देव हुआ ॥१३३॥

आगे हिसा मे प्रसिद्ध धनश्री को दिखाते है।

हिंसा कर धन श्री ने, पाया दंड अपार।
जग निंदा को पायकर, लहा नरक दुख भार॥ १३४

अर्थ—धनदेव की स्त्री धनश्री बड़ी दुष्टा थी। उसके गुणपाल पुत्र और सुन्दरी पुत्री थी। इनके जन्म के पूर्व धनश्री ने कुण्डल को पाला था। पति के मरने पर वह कुण्डल से रमने लगी। जब पुत्र बडा हुआ तो वे दोनो उसको मारने का उपाय सोचने लगे। यह विचार सुन्दरी ने सुनकर भाई से कह दिया। जव गुणपाल गाय चराने गया तो उसने अपने वस्त्र एक वृक्ष के ठूठ को पहिना दिये। जव उसे देख कुण्डल ने खड्ग मारा तब गुणपाल ने पीछे से उसे मार डाला और घर चला आया। उसे देखकर धनश्री ने उसको मार डाला। इस पर माँ बेटी लडने लगी तब राजदूत धनश्री को पकडकर राजा के पास ले गये। राजा ने उसकी निंदा की और वडी दुर्दशा के साथ मरवा डाला जिससे वह मर कर नरक गई ॥१३४॥

निश्चय नय से मिथ्यात्व और अनतानुबधी के अनुदय से निश्चय सम्यक्दर्शन (दर्शनप्रतिमा) होता है। अप्रत्याख्यान के अनुदय से (अणुव्रत व्रतादिप्रनिमारूप) देश चारित्र होता है। प्रत्याख्यान के अनुदय से निश्चय महाव्रत होता है। सज्वलन के अनुदय से निश्चय परमसमाधि होती है और उसकी सफलता से केवल ज्ञान होता है। इस प्रकार आत्मीकगुणो का विकास होता है जो व्यवहार की पूर्णता के आधीन है। व्यवहार समाधि आहार त्याग से होती है।

आगे सत्याणुव्रत का स्वरूप दिखाते है।

पर दुख कारण जो बने, वचन झूठ या साँच।
कहे कहावे जो नहीं, सत्य अणुव्रत जाँच ॥१३५

अर्थ—जो परजीवो को दुख का कारण वने ऐसे झूठे अथवा साँचे वचन न कहता है न कहलवाता है उसके सत्याणुव्रत होता है ॥१३५॥

आगे सत्याणुव्रत के अतीचार दिखाते है।

अतीचार सत्याणु व्रत, चुगली गुप्त बखान।
लिखे झूठ मेटे जमा, और झूठ व्याख्यान ॥१३६

अर्थ—मिथ्या उपदेश देना, मिथ्या लेख लिखना, किसी की गुप्त बात प्रकट कर देना, किसी की जमा भई रकम न देना और चुगली (मिथ्यासकेत) करना ये पाँच सत्याणुव्रत के अतीचार हैं ॥१३६॥

१—अयोग्यस्थूलहिसादि पाप—जो करने योग्य न हो, नेत्रो से स्पष्ट दिखलाई देते हो और जिनके करने से धन, प्राण और धर्म की रक्षा का कोई प्रयोजन न हो उसको अयोग्यस्थूलहिमादिपाप कहते हे।

२—योग्यस्थूलहिसादिपाप—जो करने योग्य हो, नेत्रो से स्पष्ट दिखलाई देते हो और जिनके करने से धन, प्राण अथवा धर्म की रक्षा का प्रयोजन हल होता हो उसको योग्यस्थूलहिसादिक पाप कहते हे।

३—सूक्ष्महिमादिपाप—जो नेत्रो से दिखलाई नही देते हो किन्तु व्यापार आदि रूप आरभ दिखलाई देता हो उसको सूक्ष्महिसादिक पाप कहते है।

४—सूक्ष्मतर हिमादिक पाप—जो नेत्रो से दिखलाई नही देते हो व्यापार आदि रूप आरम्भ भी दिखलाई नही देता हो केवल मुनिचर्या रूप धर्मक्रिया दिखलाई देती हो उसको सूक्ष्मतर हिमादिक पाप कहते हैं।

आगे सत्याणुव्रत में प्रसिद्ध धनदेव को दिखते है।

सत्याणूव्रत मात्र का, पालन कर धनदेव।
जगत प्रशंसा पाय कर, भया स्वर्ग में देव॥१३७

अर्थ—विदेह क्षेत्र मे धनदेव और जिनदेव दो व्यापारी थे। उन्होने परदेश जाकर आधे साझे मे व्यापार किया और वहुत धन कमाया। धन को देखकर जिनदेव बोला कि तुम्हारा जितना श्रम हुआ है उतना तुम ले लो शेप मेरा है। जब यह न्याय पचो से न हुआ तव राजा के पास गया। राजा ने कहा कि तुम दोनो अपने हाथो पर अगार रक्खो जो साँचा होगा उसके हाथ नही जलेगे। यह सुनकर धनदेव का मुख प्रसन्न हो गया और जिनदेव का उतर गया। तव राजा ने सव धन धनदेव को दिला दिया॥१३७॥

आगे झूठ वोलने में प्रसिद्ध श्रीभूत को दिखाते है।

झूठ बोल श्री भूत द्विज, रत्न धरोहर धार।
जग निंदा को पायकर, लहा नरक दुख भार॥१३८

अर्थ—सिहपुर मे श्रीभूत पुरोहित रहता था। उसने अपना नाम सत्यघोष रख लिया था। एक दिन समुद्रदत्त वैश्य पाँच रत्न सत्यघोप के पास जमाकर परदेश चला गया था। वहाँ बहुत धन कमाकर पीछे लौटा तो जहाज डूव गया। तव उसने सत्यघोष से अपने रत्न माँगे सो उसने न दिये। तब वह राजा और पचो पर पुकारता भया किन्तु सवने उसे उन्मत्त ठहराया। एक दिन रानी ने राजा की आज्ञा लेकर वैश्य के न्याय के लिये सत्यघोप के साथ जुआ खेला उसमें उसने अगूठी, चाकू और जनेऊ जीत लिया और दासी के हाथ उन चीजों को उसकी स्त्री के पास भेज दिया अत इस छल से समुद्रदत्त के पाचों रत्न मँगा लिये और वैश्य को वे रत्न दिला दिये और सत्यघोष को गधे पर चढ़वाकर निकलवा दिया

जिससे वह दुखी होकर नरक का पात्र बन गया ।।१३८।।

आगे अचौर्याणुव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

गिरा धरा भूला हुआ, जमा हुआ पर दर्व ।
गहे न देवे अन्य को, अचौर्याणुव्रत सर्व ।।१३९

अर्थ—जो किसी का गिरा, धरा अथवा भूले हुये पदार्थो को नही उठाता है, न उठाकर किसी को दान स्वरूप देता है, न किसी के जमा किये हुये द्रव्य को देने से अस्वीकार करता है, उसके अचौर्याणुव्रत होता है ।।१३९।।

आगे अचौर्याणुव्रत के अतीचार दिखाते है ।

नृप आज्ञा लोपे तथा, तोल माल में कोष ।
चोर मिले चोरी गहे, अचौर्याणुव्रत दोष ।।१४०

अर्थ—चोरो से दूसरो की चोरी कराना, चुराये हुये माल को चोरो से खरीद लेना, कम-वढ वाट रखना, अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर बेचना और राजा की आज्ञा उल्लघन करना ये पाच अचौर्याणुव्रत के अतीचार है ।।१४०।।

आगे अचौर्याणुव्रत मे प्रसिद्ध वारिषेण को दिखाते है ।

अचौर्याणुव्रत के विषें, वारिषेण विख्यात ।
जगत प्रशंसा पायकर, अंत स्वर्ग गति प्राप्त ।।१४१

अर्थ—वारिषेण राजा श्रेणिक के सुपुत्र थे। वे रात्रि समय उद्यान में कायोत्सर्ग किया करते थे । एक दिन विद्युत चोर वेश्या के कहने से सेठ का हार चुराकर राजदूतो के भय से वारिषेण के आगे डालकर भाग गया । रात्रि के कारण राजदूतो ने वारिषेण को चोर ठहराकर राजा के सामने कर दिया । राजा ने राजनीति

के आवेश मे आकर प्राणदंड के लिए चाडाल को दे दिया। जब चाडाल ने वन मे ले जाकर उन पर खड्ग चलाया तो वह हार बन गया तव देव जय जयकार करने लगे। यह सुनकर वह राजा बहुत पछताया और पुत्र स्नेह व्यक्त करता भया किन्तु वारिषेण कुमार ने संसार की असारता देख दिगम्बर भेप धारण कर लिया और वे स्वर्ग के पात्र भये ॥१४१॥

आगे चोरी में प्रसिद्ध तापसी को दिखाते है।

चोरी करके तापसी, पायो दुःख महान्।
जग निंदा को पायकर, अंत नरक स्थान ॥१४२

अर्थ—कोसाम्वी नगरी मे एक तपस्वी रहता था। वह रात में चोरी करता था और दिन मे वृक्ष की डाल से छीका बाँधकर बैठा रहता था, यह दिखाने को कि मै पृथ्वी तक को नही छूता। जब नगर मे वहुत चोरियाँ हो गई तव राजा ने कोतवाल को डाटा। वह बहुत खोजकर घर बैठ गया। एक दिन ब्राह्मण भीख को आया तब कोतवाल बोला "तुम्हे भीख की पडी है हमे प्राणों की पडी है।" सव समाचार सुनकर ब्राह्मण बोला "क्या तुमने उस तपस्वी की जाँच की ?" तब कोतवाल बोला "वह पृथ्वी तक को नही छूता।" ब्राह्मण वोला "मेरी स्त्री भी अपने बच्चे को अग छिपाकर दूध पिलाती थी। उसे परपुरुष से रमती देख मैंने घर छोड दिया और अपने धन का सोना मोल ले पोले डडे मे भरकर अपने साथ रख लिया था। एक दिन एक पुरुप मुझसे बोला कि मैं और आप जिसके यहाँ सोये थे उसका एक तिनका मेरी पगडी मे लगा चला आया है सो उसको देकर आता हूँ इस पर मुझे उसका विश्वास हो गया। एक दिन वह कुत्ता भगाने के लिए मेरे हाथ से डडा खेचकर भाग गया तब से मैं भीख माँगने लगा। यह सुन कोतवाल बोला आप पकड कर बताइये। तब वह अन्धा बनकर

उसकी कुटी पर दिन भर रहा जब शाम हुई तब तपसी ने छीके से उतर उसकी आँख की ओर उँगली की तो उसने बंद नही की। इस विश्वास पर वह चोरी को चला गया और ब्राह्मण उसके पीछे-पीछे जाँचकर कुटी पर आ गया और सुबह सब समाचार कोतवाल को सुनाया। कोतवाल ने चोरी का धन और तपसी को पकड कर राजा को सौप दिया। राजा ने उसे प्राण दड की आज्ञा दी-जिससे मरकर वह नरक गया ॥१४२॥

आगे ब्रह्मचर्याणुव्रत का स्वरूप दिखाते है।

निजनारी इक आदि या, नव्वे छै हजार।

एक राख शेषनि तजे, ब्रह्म अणुव्रत धार ॥१४३

अर्थ—जिनके निजनारी एक, दो अथवा छियानवे हजार तक होती हैं तो वह उनमे से एक स्त्री रखकर शेषनि का ब्रह्मचर्यव्रत ले लेता है तब उसके ब्रह्मचर्याणुव्रत होता है ॥१४३॥

आगे ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतीचार दिखाते है।

परविवाह अति काम चित, गमन षंड गृह दोष।

पर तिय वेश्या घर गमन, दोष स्वदारा तोष ॥१४४

अर्थ—दूसरो के लडका लडकियो के विवाह करना, परनारी के घर जाना, वेश्या के घर जाना, नपुसक के घर जाना और निजस्त्री मे अति इच्छा रखना ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतीचार हैं ॥१४४॥

ब्रह्मचर्याणुव्रत में प्रसिद्ध नीली को दिखाते है।

ब्रह्मचर्यव्रत पालकर, नीली भई प्रसिद्ध।

जगत प्रशंसा पायकर, लही देव की ऋद्धि ॥१४५

अर्थ—भृगुकच्छ नगर मे जिनदत्त सेठ की सुपुत्री नीलीबाई थी। एक दिन सागरदत्त ने नीली को मदिर मे देखा और मोहित हो गया।

तव उसके पिता ने सागरदत्त से कहा कि बिना जैनी बने तुम्हे नीली नही मिलेगी। इस बात पर वे दोनो परदेश जाकर किसी जैनमुनि से जैन की सब क्रिया सीखकर जैन बन गये परन्तु विवाह हो जाने के पश्चात् फिर बौद्ध के बौद्ध हो गये और नीली को बौद्ध साधुओं को भोजन कराने के लिए वाध्य करने लगे। तव नीली ने उनके जूते भोजन मे मिलाकर उन्हे खिला दिये। इस कारण वे सव नीली के शत्रु हो गये और उसकी ननद ने उसके शील में दोष लगा दिया। यह सुनकर नीली आहार छोड़कर जैन मन्दिर मे ध्यानमग्न हो गई। तब नगर की देवी ने नगर के सब फाटक बन्द कर दिये और राजा को स्वप्न दिया कि शीलवती स्त्री के चरण द्वारा ही फाटक खुल सकेगे। इस पर नगर की सब स्त्रियो ने प्रयत्न किया परन्तु किवाड न खुले और नीली के चरण लगते ही खुल गये। तब राजा प्रजा सब उसकी प्रशसा करने लगे और अन्त में उसने स्वर्ग प्राप्त किया ॥१४५॥

आगे कुशील मे प्रसिद्ध कोतवाल की कथा दिखाते है।

जारी करके दुख लहा, कोतवाल ने मान।
जग निंदा को पायकर, अंत नरक स्थान ॥१४६

अर्थ—नासिक नगर मे यमदड कोतवाल था। उसकी सौतेली मा का नाम वसुन्धरा था। एक रात यमदड नगर की चौकसी को गया। तब वसुन्धरा यमदड की स्त्री से अपना गहना लेकर अपने प्रेमी के स्थान पर पहुँची और यमदड भी वही पहुँचा परन्तु किसी ने एक दूसरे को नही पहिचाना और व्यभिचार करने लगे। अत मे यमदड ने वसुन्धरा से गहना ले लिया और घर आकर अपनी स्त्री को दे दिया। गहने देख उसकी स्त्री को बडा अचरज हुआ और उसने अपने पति से पूछा पर उसने यो ही टाल दिया। वह नित प्रति अपनी सौतेली मा से रमने लगा। जब किसी प्रकार यह

समाचार राजा कनकरथ को ज्ञात हुआ तो उन्होने यमदंड को ऐसा दड दिया कि वह मरकर नरक गया ॥१४६॥

आगे परिग्रहपरिमाणव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

धन धान्यादिक उपधि सब, कर सीमित तज शेष ।
कहा उपधि परिमाणव्रत, या अवांछ गुण लेश ॥१४७

अर्थ—जो अपनी राजपाट आदि सपत्ति मे से क्षेत्र-घर, सोना-चाँदी, धन-धान्य, दासी-दास, वस्त्र और बरतन का परिमाण कर शेप को अपने आश्रय जनो को दे देता है अथवा धर्म कार्य मे लगा देता है उसके परिग्रह परिमाणव्रत होता है ॥१४७॥

आगे परिग्रह परिमाणव्रत के अतीचार दिखाते है ।

सोना चांदी धान्य धन, थल घर दासी दास ।
पट बरतन परिमाण का, लंघन व्यतिक्रम खास ॥१४८

अर्थ—क्षेत्र-घर, सोना-चाँदी, धन-धान्य, दासी-दास और वस्त्र-वरतन के परिमाण का उलघना करना के पाच परिग्रह परिमाण-व्रत के अतीचार है ॥१४८॥

आगे परिग्रहपरिमाणव्रत मे प्रसिद्ध जयकुमार को दिखाते है ।

परि-ग्रह का परिणाम कर, जैकुमार सुखपाय ।
जगत प्रशंसा पायकर, अंत अन्त गति पाय ॥१४९

अर्थ—जय कुमार, सोम के पुत्र हस्तिनापुर के राजा थे। उनके परिग्रहपरिमाणव्रत की प्रशसा इन्द्र से सुनकर एक देव परीक्षा के लिए आया। जब जयकुमार कैलास पर पूजा करके सुलोचना से पृथक बैठे थे तब देव ने विद्याधर की स्त्री सुरूपा का रूप वना कर उनसे कहा कि मै अपने पति से विरक्त होकर आपके पास

अनेक विद्याये और राज्य सपदादि लेकर आई हूँ अतः आप स्वीकार करे । यह सुनकर जयकुमार बोले कि मेरे सब प्रकार के परिग्रह का परिमाण है और ध्यान मे लीन हो गये । तब देव ने उनको विचलित करने की अनेक चेष्टाये की किन्तु वे विचलित न हुए। तब देव ने अपना असली रूप बनाकर उनकी बहुत प्रशसा की और अपने स्थान को चला गया । वे तप धारण कर निर्वाण को प्राप्त हुए ॥१४६॥

आगे परिग्रह लीन में प्रसिद्ध नवनीता को दिखाते है—

कर परि-ग्रह की लालसा, वणिक एक नवनीत ।
जग निंदा को पायकर, अंत नरक से प्रीति ॥१५०

अर्थ—अयोध्या मे एक लुब्धदत्त वैश्य रहता था । वह विदेश से बहुत धन कमाकर आ रहा था तो चोरो ने लूट लिया । तब वह वहाॅ से चलकर अहीरों के ग्राम मे आया और मही मॉग कर पिया तो उसमें कुछ घी निकला उसको उसने रख लिया और वही झोपडी बनाकर रहने लगा तथा वह नितप्रति मही मांग कर पिया करता और घी एक मटका मे जोडने लगा। इस कारण उसका नाम नवनीता पड गया । कुछ दिनो में घी से मटका भर गया। एक दिन वह अग्नि जलाकर सो गया और स्वप्न मे विचारने लगा कि इस घी को बेचकर व्यापार करूगा तो धन बढेगा। धन से राज्य प्राप्त कर रानी वरूगा फिर उससे कहूँगा कि मेरे पैर दबा । जब वह पेर दबायेगी तो उसको लात मारूगा कि तू पैर दबाना नही जानती । ऐसा विचारने के साथ ही उसने लात मार दी जिससे घी का मटका अग्नि पर गिरा और झोपडी जलने लगी । उसके साथ आप भी जलकर नरक गया ॥१५०॥

आगे गुणव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

पंच अणुव्रत ग्रहण से, जो होवे गुण प्राप्त ।
उनके साधक जो बने, सो गुण-व्रत विख्यात ।।१५१

अर्थ—पच अणुव्रत ग्रहण करने से जो उस संबधी दयादि गुणो का विकास होता है उनके बढने मे जो साधक होते है उनको गुण-व्रत कहते है ।।१५१।।

आगे गुणव्रत के भेद दिखाते है ।

गुण व्रत तीन प्रकार का, भाषा जिनवर लोग ।
दिग्व्रत अनरथ दंडव्रत, गिने भोग उपभोग ।।१५२

अर्थ—श्री जिनेन्द्र भगवान के उपदेश के अनुसार गुणव्रत तीन प्रकार का होता है, दिग्व्रत, अनर्थदडव्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत ।।१५२।।

आगे दिग्व्रत का स्वरूप दिखाते है ।

योग्य थूल अघ अणु हता, सूक्ष्म घटावन काज ।
दश दिश की मर्याद रख, निवसे दिग्व्रत राज ।।१५३

अर्थ—जो अणुव्रत धारण करके योग्यस्थूल पापास्रव को रोक लेता है वह अपनी चर्य्या मे सूक्ष्म पापास्रव को रोकने के लिये दश दिशाओ की मर्यादा वाँधकर निवास करता है उसके दिग्व्रत होता है सूक्ष्म पाप उनको कहते है जिनके होने से हिंसादि पाप नैत्रो से दिखलाई नही देते ।।१५३।।

आगे दिग्व्रत की मर्यादा बाँधने की रीति दिखाते है ।

किसी देश गिर उदधि तक, अठ दिश की हद ठान ।
अधो ऊर्ध दिश के लिये, कर योजन की आन ।।१५४

अर्थ—चार दिशा और चार विदिशाओं की मर्यादा के लिये किसी देश, किसी पर्वत अथवा किसी समुद्र तक निश्चित कर लेना चाहिए और अधो तथा ऊर्धदिशा के लिये कुछ योजन निश्चित कर लेना चाहिये ! यह दश दिशा की मर्यादा वाँधने की रीति है ॥१५४॥

आगे दिग्व्रत के अतीचार दिखाते है।

अधो ऊर्ध लंघे दिशा, लेवे क्षेत्र बढ़ाय।
भूले अवधी दोषपन, दिग्व्रत के जिन गाय ॥१५५

अर्थ—नीचे की दिशा का उलघना, ऊपर की दिशा का उलघना, किसी दिशा का क्षेत्र कम कर उसके बदले दूसरी दिशा का क्षेत्र वढा लेना और ली हुई मर्यादा भूल जाना ये पाच दिग्व्रत के अतीचार है ॥१५५॥

आगे दिग्व्रत में प्रसिद्ध विशल्या को दिखाते हैं।

पूर्व जन्म में विशल्या, दिग्व्रत धरा अनूप।
उस तन का स्नान जल, भया औषधी रूप ॥१५६

अर्थ—पूर्व जन्म मे विशल्या, विदेह क्षेत्र की पुडरीक नगरी के चक्रधर, चक्रवर्ती की अनग सरा नाम की पुत्री थी। उसको एक दिन पुनर्वसु नाम के विद्याधर ने देखा और अपने विमान मे बैठा कर उसको ले चला। तब उसके पिता ने उसका विमान तोड डाला। इस कारण विद्याधर ने अपनी विद्या के बल से अनगसार को एक भयकर अटवी में छोड़ दिया। वहाँ वह घबडा कर कई दिनो तक रोती रही। अत मे वह वेलातेला उपवास के पश्चात् फल और पत्तो से अपना जीवन निर्वाह करने लगी। इस तरह ३ हजार वर्ष बीत जाने के पश्चात् एक दिन अरहदास विद्याधर सुमेरु पर्वत की बन्दना करके लौट रहा था। उसको अचानक वह

कन्या दिखलाई दी। तब उसने उसको उसके पिता के यहाँ ले जाने की इच्छा की। इस पर कन्या ने कहा मेरे चारो ओर १००-१०० गज से आगे न जाने का नियम है। यह सुनकर वह उसके पिता को वहाँ ले आया। उस समय उस कन्या को एक अजगर ने निगलना आरम्भ कर दिया था। यह देखकर उसके पिता ने अजगर को मारने की इच्छा की परन्तु कन्या ने अभयदान का सकेत किया। अन्त मे वह मर कर स्वर्ग मे देवी हुई। वहाँ से आयु पूर्ण कर द्रोणमेघ राजा के यहाँ विशल्या नाम की पुत्री भई। दिग्व्रत के प्रभाव से उसके स्नान का जल औषधि बन गया। उस जल का प्रयोग भरत जी ने अपनी रोगी सेना पर किया जिससे वह निरोगी बन गई तब भरत जी ने उस जल को वितरण करने के लिये अपने पास रक्खा। यह समाचार किसी पथिक से श्रीराम को पता चला तो हनुमान जी को भरत जी के पास भेजा तब भरत जी ने विशल्या को ही साथ भिजवा दिया। जब विशल्या लक्ष्मण जी के पास आई तो उनके अग मे लगी हुई शक्ति दूर हो गई जो कि रणक्षेत्र मे रावण ने मारी थी ॥१५६॥

आगे अनर्थदडव्रत का स्वरूप दिखाते है।

बिना काम भीतर अवधि, अघ कारण से मुक्त।
कहते अनरथ दंड व्रत, जो संयम संयुक्त ॥१५७

अर्थ—जो दिग्व्रत के मर्यादित क्षेत्र मे भी बिना आयोजन सूक्ष्म हिसादिक पाच पापो के कारणो से मुक्त रहता है उसके अनर्थदडव्रत होता है इस अनर्थदडव्रत के धारण करने से बहुत लाभ होता है कारण व्यर्थ के पापास्रवों से वह जीव बच जाता है जो कि अनावश्यक है ॥१५७॥

आगे अनर्थ दडो के भेद दिखाते है।

पाप देश वध दान अरु, अशुभ ध्यान श्रुतराग।
अरु प्रमाद चर्या सहित, अनरथ दंड विभाग ।।१५८

अर्थ—पापोपदेश, हिसादान, अशुभ ध्यान, दु श्रुत और प्रमाद-चर्या ये पाँच अनर्थदड के भेद है ।।१५८।।

आगे पापोपदेश का स्वरूप दिखाते है।

पशु पीड़ा हिंसा वणिज, बहु आरंभ प्रलोभ।
प्रवृति कथा पैदा करे, पाप देशना क्षोभ ।।१५९

अर्थ—जो दूसरो को ऐसा उपदेश देता है कि पशु वश करने से वहुत लाभ होता है, अमुक देश मे पशु बहुत तेज विकते है, बहु आरभ से धन की वहुत प्राप्ति होती है, अमुक आचरण (दड कसरत) से शरीर को बहुत लाभ होता है और अनेक प्रकार की कुकथा कहता है उसके पापोदेश अनर्थदड होता है ।।१५९।।

आगे हिसादान का स्वरूप दिखाते है।

असि फरसा खन्ता अगिन, सांकल सींगी बान।
वध कारण दे अन्य को, हिंसा दान बखान ।।१६०

अर्थ—जो पुरुप हिसा के कारण ऐसे तलवार, फरसा, खन्ता, अग्नि, साँकल, सीगी, धनुष और वाण आदि को दान स्वरूप अथवा माँगे किसी दूसरे को देता है उसके हिसादानअनर्थदड होता है ।।१६०।।

आगे अशुभध्यान का स्वरूप दिखाते है।

राग द्वेष से अन्य के, मर कट जावे लोग।
चिंतन को ज्ञानी कहें, अशुभ ध्यान का योग ।।१६१

अर्थ—जो राग द्वेष को धारण कर दूसरो के स्त्री पुत्रादि मर जावे आदि चिंतवन करता है उसके अशुभ ध्यान अनर्थ दड होता है ॥१६१॥

आगे दुश्रुतअनर्थदड का स्वरूप दिखाते हैं।

जोश उपधि आरम्भ भ्रम, राग द्वेष मद काम।
जिनसे चित विकृत बने, सोश्रुत दुश्रुत नाम ॥१६२

अर्थ—जो ऐसे शास्त्रो को पढता अथवा सुनता है जिनसे जोश, परिग्रह, आरम्भ, मिथ्यात्व, राग, द्वेष, अभिमान और काम विकार बढकर चित्त विकृत्त हो जाता है उसके दुश्रुतअनर्थदंड होता है ॥१६२॥

आगे प्रमादचर्याअनर्थदड का स्वरूप दिखाते है।

भू जल अग्नि पवन अरु, तरु फल पत्ता छेव।
कर करावे निष्फला, प्रमाद चर्या भेद ॥१६३

अर्थ—जो पुरुष किसी खास प्रयोजन के बिना पृथ्वी खोदता है, पानी फैलाता है, अग्नि जलाता है, हवा करता है, पेड और फल आदि को काटता है अथवा कटवाता है उसके प्रमादचर्या-अनर्थदड होता है ॥१६३॥

आगे अनर्थदडव्रत के अतीचार दिखाते है।

विट चेष्टा बकवाद बहु, अति संचय वच भंड।
योग वक्रता दोषपन, हैं व्रत अनरथ दंड ॥१६४॥

अर्थ—भडवचन बोलना, कुचेष्टा करना, अधिक बकवाद करना आवश्यकता से अधिक पदार्थ इकट्ठे करना और योग वक्र रखना वे पांच अनर्थदडव्रत के अतीचार है ॥१६४॥

आगे अनर्थदडव्रत मे प्रसिद्ध सुखपाल को दिखाते है।

धर कुछ अनर्थ दण्ड व्रत, सुखपाल रुधनपाल।
पाल भया सुखपाल सुर, छोड़ नरक धनपाल ॥१६५

अर्थ—कौशाम्बी नगरी मे सुखपाल धनपाल नाम के दो सेठ रहते थे। एक दिन अभयघोष मुनिराज ने श्रावक के बारह व्रतो का उपदेश करते हुए इन दोनो से ग्रहण करने को कहा। तव इन दोनो ने वडी कठिनता से "हिसा के उपकरण न मॉगे देंगे, न वेचेगे" यह व्रत लिया। एक दिन धनपाल से डोगर ने कहा कि मै तुम्हारा पडोसी और ऋर्णी हूँ इस नाते से अपना खड्ग मुझे दे दो तो मै एक विवाह मे चला जाऊँ। इसपर धनपाल ने डोंगरे को खड्ग दे दिया। खड्ग लेकर वह विवाह करने गया और लौटते समय वह चोरी करने लगा। एक दिन कोतवाल ने उसका पीछा किया तो खड्ग छोडकर भाग गया। वह खड्ग धनपाल का प्रतीत हुआ इसपर राजा ने उसको देश से निकाल दिया और इस दु ख से मरकर वह नरक गया। एक दिन उस खड्ग को राजा देख रहा था तो मन्त्री ने कहा ऐसा खड्ग सुखपाल के पास भी है। तब राजा ने सुखपाल को बुलाकर खड्ग मॉगा तो वह बोला कि आप उसका क्या करेंगे वह तो काठ का है। राजा को विश्वास न हुआ और उसने अपने सेवको को भेजकर सुखपाल के घर से खड्ग मँगवा लिया और लोहे का खड्ग देखकर कुपित होकर बोला कि इसकी जिह्वा इसी खड्ग से मेरे सामने अभी काट दो। जब सेवको ने खड्ग उसकी जिह्वा पर चलाया तो वह काठ का हो गया और आकाश से उसके ऊपर फूलो की वर्षा होने लगी। इस अतिशय को देखकर राजा और मन्त्री ने सुखपाल की बहुत प्रशसा की और अपने-अपने पुत्रो को अधिकार देकर मुनि हो गये। सुखपाल ने पहले ही प्रतिज्ञा करली थी कि यदि इस सकट से बचूंगा तो मुनि

हो जाऊँगा अत. वह भी अपने पुत्र को अधिकार देकर मुनि हो गया और व सब तप कर स्वर्ग गये ।।१६५।।

आगे भोगोपभोग परिमाणव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

रोके इन्द्रिय विषय को, नियम भोग उपभोग ।
उस अवधी से और भी, करता राग वियोग ।।१६६।।

अर्थ—जो परिग्रह परिमाणव्रत मे दश प्रकार के परिग्रह का परिमाण कर लेता है वह उस परिमाण मे और भी पंचेन्द्रियो की विषय लालसा घटाने के लिए अमुक भोग और अमुक उपभोग पदार्थो का आजन्म तक अथवा किसी अवधि तक त्याग कर देता है उसके भोगोपभोगपरिमाणव्रत होता है ।।१६६।।

आगे भोग और उपभोग पदार्थो को दिखाते है ।

असन वसन आदिक सरव, पंचेन्द्रिय के भोग ।
एक बार के भोग हैं, पुनि पुनि के उपभोग ।।१६७।।

अर्थ—जो कोई पदार्थ एक बार भोग कर फिर दुबारा भोगने मे नही आता ऐसे लाडू आदिक भोग पदार्थो के भोग को भोग कहते है और जो कोई पदार्थ एक बार भोगकर फिर भी दुबारा भोगने मे आजाता है ऐसे वस्त्रादि उपभोग पदार्थो के भोग को उपभोग कहते है ।।१६७।।

आगे त्याग भेद दिखाते है ।

नियम और यम भेद से, त्याग धर्म दो भाग ।
नियत काल सो नियत है, जीवन तक यम लाग ।।१६८

अर्थ—भोग और उपभोग के पदार्थो का त्याग दो प्रकार का होता है एक नियम रूप से एक यम रूप से जिसमे काल की मर्यादा

हो उसको नियम कहते है और जिसमे काल की मर्यादा कुछ भी न हो अर्थात् आजन्म के लिये हो उसको यम कहते है ॥१६८॥

आगे नियम और यम धारण की रीति दिखाते है।

खान पान भूषन वसन, न्हान शयन अरु गीत।
मनमथ वाहन गंध तन, पुष्पादिक सांगीत ॥१६९
घड़ी रात दिन पक्ष या, मास वर्ष इक दोय।
क्रम से शक्ति बढ़ाय कर, जीवन भर को खोय ॥१७०

अर्थ—भोजन, रस, इलायची, हरी वस्तु, पानी, भूषण, वस्त्र, स्नान, सोना, बैठना, मैथुन, सवारी, गीत, सुगध, केशर, विलेपन और पुष्पमालादि का घडी, रात, दिन, पक्ष, मास, वर्ष का त्याग करना नियम कहलाता है। इनका ही आजन्म का त्याग यम कहलाता है ॥१६९-१७०॥

आगे भोगोपभोग परिमाणव्रत के अतीचार दिखाते है।

विषय राग गत स्मरण, तृष्णा वांच्छा भोग।
मिथ्या अनुभव व्यतिक्रमा, नेम भोग उपभोग ॥१७१

अर्थ—विषयभोगों से प्रीति रखना, पूर्व भोगों का स्मरण करना, वर्तमान भोगो मे अधिक तृष्णा रखना, आगामी भोगने की अति इच्छा रखना और बिना भोगे भोगने जैसे भाव करना ये पॉच भोगोपभोगपरिमाणव्रत के अतीचार है ॥१७१॥

आगे भोगोपभोगपरिमाणव्रत मे प्रसिद्ध वसुमित्र को दिखाते है।

लिया भोग परिमाण व्रत, मुनिवर से वसुमित्र।
शत्रू से सत्कार ले, पाया स्वर्ग पवित्र ॥१७२

अर्थ—पुण्डरीक नगरी का राजा वसुमित्र था। उसको एक दिन दृढरथ मुनिराज के दर्शन हुए। उन्होने राजा से कहा कि हे भव्य तू धर्म पर श्रद्धान तो यथार्थ रखता है किन्तु श्रावक व्रत के बिना श्रद्धा की शोभा नही। तब राजा बोला मेरे सिर पर राज्य का भार है तब मुनि बोले तू अपने भोग और उपभोगो का नित प्रति परिमाण कर लिया कर इससे तुझे बाधा न होगी। राजा ने यह स्वीकार कर लिया वह प्रतिदिन परिमाण कर लिया करता था। इस तरह करते २ वे नियम आजन्म को बन गये। फलस्वरूप उसके परिणाम ऐसे बन गये कि वह दण्ड की जगह, "ऐसा आगे न करना" ऐसा कह देता था। इस व्यवहार से उसकी प्रजा धर्मज्ञ बन गई। उसके इस शान्त स्वभाव को देखकर खेटपुर के राजा चन्द्रप्रभ ने उसका गढ घेर लिया और अपना दूत वसुमित्र के पास भेजा कि सिहासन छोडो या नमस्कार करो। तब वसुमित्र ने दूत से कह दिया कि सिंहासन खाली है और अपने मत्री आदि से भी कह दिया कि उनका राज्याभिषेक कर देना और आप स्वय मन्दिर मे प्रतिज्ञा करके बैठ गया कि इस आपत्ति से बचूँगा तो मुनि हो जाऊँगा। उधर दूत के वचन सुनते ही चद्रप्रभ आया तो सबने उसका सत्कार किया परन्तु ज्योही उसने सिहासन को हाथ लगाया तो उसका हृदय कॉपने लगा। तब वह वसुमित्र के पास गया और उसकी उदारता की प्रशसा कर उससे क्षमा याचना की। अत मे वे दोनो अपने अपने पुत्रो को राज्य देकर दृढरथ मुनिराज के शिष्य बन गये और तप कर स्वर्ग में देव हुए ॥१७२॥

आगे शिक्षाव्रत का स्वरूप दिखाते हैं।

अहिंसाणु व्रत आदि को, जो दृढ़ करता होय।
शिक्षा दे पूरे करे, सो शिक्षाव्रत जोय ॥१७३

अर्थ—जो अहिसाणुव्रत आदि व्रतो को दृढ करता हो और

उनको पूरी पूरी शिक्षा देकर उनको पूरे करता हो उसको ज्ञानी पुरुप शिक्षाव्रत कहते है ॥१७३॥

आगे शिक्षाव्रत के भेद दिखाते है ।

देशविरत सामायिकं, अरु प्रोषध—उपवास ।
वैयाव्रत मिलकर कहे, शिक्षाव्रत चउ रास ॥१७४

अर्थ—देशविरत, सामायिकव्रत, पोषधोपवासव्रत और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत के भेद है ॥१७४॥

आगे देशव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

दिग्व्रत की मर्याद में, अमुक काल तक कोय ।
क्षेत्र घटावे दिन व दिन, ग्रही देश-व्रत सोय ॥१७५

अर्थ—जो पुरुप दिग्व्रत के विशाल क्षेत्र में से कुछ काल की मर्यादा रखकर घटाता रहता है उसके देशव्रत शिक्षाव्रत होता है ।१७५

आगे देशव्रत की मर्यादा बॉधने की विधि दिखाते है ।

अमुक गली घर ग्राम अरु, खेत नदी बन कोस ।
सीमावधि सो देश व्रत, कहें केवली पोष ॥१७६
संवत् ऋतु चौमास छै, पक्ष नक्षत्र प्रमाण ।
काल भेद से देश व्रत, गण धर किया बखान ॥१७७

अर्थ—चार दिश और विदिशाओ की मर्यादा अमुक गली, अमुक घर, अमुक गाव, अमुक खेत, अमुक नदी, और अमुक वन तक तथा ऊपर और नीचे के लिये इतने कोस की मर्यादा का सवत्, ऋतु, चौमास, छै मास, पक्ष अथवा नक्षत्र तक रख लेनं को देशव्रंत की यथार्थ नियम विधि कहते है ॥१७६-१७७॥

आगे देशव्रत के अतीचार दिखाते है।

नर भेजे या शब्द कर, आंख हाथ की सेन।
कंकड़ फेके दोष पन, कहे देश—व्रत ऐन ॥१७८

अर्थ—अपना नौकर भेजकर मर्यादा के बाहर की वस्तु मगाना, शब्द करके मगाना, ऑख का सकेत करके मगाना, हाथ का सकेत करके मगाना और ककड फैंक करके मगाना ये पाँच देशव्रत के अतीचार है ॥१७८॥

आगे देशव्रत मे प्रसिद्ध सुव्रत सेठ को दिखाते है।

सुव्रत ने मुनिराज से, लिया देशव्रत धार।
चोर आय सेवक बने, मुनि बन स्वर्ग सिधार ॥१७९॥

अर्थ—वैजन्ती नगरी मे सुव्रत नाम का एक सेठ रहता था। एक दिन उसके यहाँ प्रभाचन्द्र नामक मुनिराज का आहार हुआ। आहार कर मुनिराज बोले कि त्याग के विना यह जीव गमन करे या न करे ईर्यापथ आस्रव अवश्य होता है। इससे हे भव्य दिन को न बने तो रात को अवश्य गमन का त्याग कर दिया कर। यह सेठ ने स्वीकार कर लिया और प्रतिदिन जहाँ वह सोता था उस स्थान को छोडकर अन्य स्थान के गमन का त्याग कर देता था। एक दिन सेठ अपने घर मे प्रतिदिन की तरह त्याग कर सो रहा था कि चोर आये और सेठ का बहुत धन बाँध लिया किन्तु सेठ ने धन की चिता न कर, व्रत का ध्यान रखते हुए अपने सेवको को सकेत भी नही किया और चोरो को धन ले जाने दिया। चोरो ने वह धन अपने स्वामी को दिया। उस धन को देखकर चोरो के स्वामी ने उनसे पूछा कि इतना धन तुम कहाँ से लाये तब चोरो ने उस सेठ का पता बताया। यह सुन चोरो के स्वामी ने उनसे कहा

जाओ उसका सारा धन वही रख आओ वह तो वडा धर्मात्मा है और मै भी पीछे से आता हूँ कदाचित् वह न ले। और ऐसा ही हुआ। सेठ चोरो से बोला ले जाओ, खाओ पियो। तब चोरो के स्वामी ने वहुत क्षमा याचना की और आगे चोरी करने का त्याग किया। इस पर सेठ अपने पुत्र को अधिकार सौप मुनि हो गया और तपकर स्वर्ग गया ॥१७९॥

आगे सामायिक का स्वरूप दिखाते है।

नियत काल तक शुभाशुभ, मन वच तन व्यापार।
त्याग योग में थिर रहे, सो सामायिक धार ॥१८०॥

अर्थ—जो पुरुप किसी निश्चित समय तक मन, वचन और कार्य के शुभाशुभ व्यापारो को रोक कर आत्मयोग में स्थिर हो जाता है उसके सामायिक शिक्षाव्रत होता है ॥१८०॥

आगे सामायिक योग्य समय और आसन दिखाते है।

प्रतिदिनादि मध्यान्त की, घड़ी दोय छै चार।
पद्मासन खडगासना, सामायिक व्रतधार ॥१८१

अर्थ—प्रत्येक दिन के आदि, अन्त और मध्यान काल की दो, चार अथवा छै घडी तक पद्मासन अथवा खडगासन सामायिक शिक्षाव्रत को करना चाहिये ॥१८१॥

आगे समय निश्चित करने की रीति दिखाते है।

माला छाया पाठ तक, दीपक या घड़ियाल।
किसी एक को ग्रहण कर, सामायिक व्रत पाल ॥१८२

अर्थ—एक या दो आदि माला की, हाथ दो हाथ छाया की, किसी ऋषभस्तोत्रादि के पाठ की, किसी दीपक बुझने तक की

अथवा दो, चार या छै आदि घड़ी मे से किसी एक की मर्यादा लेकर सामायिक शिक्षाव्रत को करना चाहिये ॥१८२॥

आगे सामायिक योग्य स्थान दिखाते है।

सामायिक हो सून्य घर, अथवा वन निर्बाध।
जिन मंदिर गिर गुफा में, निर्मल चित आराध॥१८३॥

अर्थ—सामायिक निर्मल चित्त के साथ सूने घर में होता है, जीव-जन्तु रहित वन में होता है, जिन मन्दिर मे होता है, पर्वत की शिखर पर होता है अथवा गुफा में होता है ॥१८३॥

आगे सामायिक योग्य चितवन दिखाते है।

अशरण अशुभ अनित्य अरु, दुखमय भव में वास।
चिंत्य मोक्ष विपरीत है, सामायिक में खास ॥१८४॥

अर्थ—जिस ससार मे मेरा निवास है उस ससार का कोई रक्षक नही है, वह ससार शुभ नही है, वह ससार नित्य नही है, वह ससार सुख का भाजन नही है इससे विपरीत मोक्ष में कोई भक्षक नही है, मोक्ष अशुभ नही है मोक्ष अनित्य नही है, मोक्ष दु ख का भाजन नही है ऐसा सामायिक मे चितवन करना चाहिये ॥१८४॥

आगे सामायिक मे सहने योग्य परीषह दिखाते है।

शीत उष्ण डांसादि का, दुख उपसर्गहि मौन।
सहन करे थिर योग से, सामायिक थिर तौन॥१८५॥

अर्थ—सामायिक धारण करने के पश्चात् शीत, उष्ण, डास, मच्छर और उपसर्गादि का दुःख सहन करना चाहिये, मौन नही छोडना चाहिये और योग में निश्चल रहना चाहिये ॥१८५॥

आगे सामायिक प्रति दिवस वढाने से लाभ दिखाते है।

बल से सामायिक बढ़ा, यथा योग्य प्रतिवार।
व्रत द्वादस परिपूर्ण को, कारण चित इकसार॥१८६॥

अर्थ—अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन सामायिक व्रत को बढाना चाहिये, सामायिक व्रत को बढाने से चित्त में एकाग्रता होती है चित्त में एकाग्रता होने से वारह व्रतो की पूर्णता होती है ॥१८६॥

आगे सामायिक के अतीचार दिखाते है।

मन वच तन चंचल करे, करे पाठ में भूल।
और अनादर दोष पन, सामायिक के मूल॥१८७॥

अर्थ—अपने मन को चलायमान करना, वचन को चलायमान करना, शरीर को चलायमान करना, करते हुए पाठ के पदो को भूल जाना और सामायिक व्रत को विनय के साथ न करना, ये पाँच सामायिक शिक्षा व्रत के अतीचार है ॥१८७॥

आगे सामायिक व्रत मे प्रसिद्ध नागदत्त को दिखाते है।

नागसेन ने हार को, नागदत्त ढिंग डार।
शोर किया यह चोर है, बरसे फूल अपार॥१८८॥

अर्थ—उज्जैयनी मे एक सागरदत्त सेठ रहता था। उसके नागदत्त नाम का धर्मात्मा पुत्र था। उसका विवाह समुद्रदत्त सेठ की पुत्री प्रियगुश्री के साथ हुआ था। इससे नागसेन नाम का सेठपुत्र नागदत्त से भारी शत्रुता रखने लगा क्योंकि वह प्रियंगुश्री को चाहता था। एक दिन नागदत्त जैन मन्दिर मे सामायिक कर रहा था तो नागसेन ने उसके पैरों के पास अपने गले से हार

उतारकर रख दिया और चिल्लाने लगा कि सब लोग देखो यह मेरे गले से हार उतार कर भागा सो मै इसके पीछे दौडा सो अब यह मन्दिर मे सामायिक का ढोग बनाकर खडा है। जब यह समाचार राजा के सामने गया तो राजा ने नागदत्त के पक्ष मे कोई प्रमाण न पाकर नागदत्त का सिर काटने के लिये चाडाल को सौप दिया। जब चाडाल ने खड्ग चलाया तब वह हार बन गया और उसके ऊपर फूलो की वर्षा होने लगी यह देख नागदत्त और राजा आदि मुनि हो गये और तपकर स्वर्ग मे वे देव हुए ॥१८८॥

आगे उपवास शिक्षाव्रत का स्वरूप दिखाते है।

वस्तु क्षुधा हर तृषा हर, मुख बद्बू हर रोग।
मुख न धरे जिस दिन इन्हें, उस दिन अनशन योग।१८९

अर्थ—जो धर्म की भावना रखकर क्षुधा हरने वाली वस्तुओ को, तृषा हरने वाली वस्तुओ को, मुखबदबू हरने वाली वस्तुओं को और रोग हरने वाली वस्तुओं को जिस दिन त्याग देता है उस दिन उसके उपवास शिक्षाव्रत होता है ॥१८९॥

आगे उपवास के दिन और हेतु दिखाते है।

चतुर्दशी अरु अष्टमी, दश लक्षण अष्टान।
पर्वदिवस अवधार कर, अनशन व्रत को ठान॥१९०

अर्थ—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी अष्टानिका और दशलक्षणी ये सब पर्व के दिन है इन दिनों मे उपवास करना चाहिये ॥१९०॥

आगे उपवास के भेद दिखाते है।

एकासन प्रोषध कहा, कुछ न भुक्ति उपवास।
त्रय दिन में आहार द्वय, सो प्रोषध उपवास ॥१९१॥

अर्थ—उपवास व्रत तीन प्रकार का होता है प्रोषध, उपवास और प्रोषधोपवास, जिस उपवास के दिन एक आहार लिया जाता है उसको प्रोपध व्रत कहते है जिस उपवास के दिन सवथा आहार त्याग दिया जाता है उसको उपवास व्रत कहते है और जिस उपवास के एक दिन पहिले और पीछे एक आहार लिया जाता है और उपवास के दिन सर्वथा आहार का त्याग किया जाता है उसको प्रोषधोपवास कहते है ।।१८१।।

आगे उपवास के दिन शारीरिक क्रियावर्जित दिखाते है ।

षटारंभ श्रंगार अरु, गीत नृत्य अरु वास ।
अंजन मंजन रतिक्रिया, त्यागे दिन उपवास ।।१८२

अर्थ—आहार के अतिरिक्त उपवास के दिन में आरम्भ (चक्की,. चूला, झाड़ू, बुहारी, पानी, व्यापारादि) शृ गार, गीत, नृत्य, खुशबू, अजन, मंजन और स्त्री विषयादि को छोड देना चाहिये ।।१८२।।

आगे उपवास के दिन धर्मचर्या दिखाते है ।

धर्मामृत तृष्णा सहित, सुने सुनावे खास ।
ज्ञान ध्यान रत बल सहित, होवे दिन उपवास ।।१८३।।

अर्थ—उपवास के दिन दैनिक धार्मिक चर्या के पश्चात् शास्त्र सुनना और सुनाना चाहिये, साधर्मी के साथ ज्ञान चर्चा करना चाहिये और आत्मध्यान में लीन होना चाहिये ।।१८३।।

आगे उपवास व्रत के अतीचार दिखाते है ।

अति भोजन आरंभ अरु, निद्रा विकथा वास ।
जल आदिक उपचार पन, कहें दोष उपवास ।।१८४।।

अर्थ—उपवास के पहिले अधिक और गरिष्ठ भोजन करना, व्यापारादि के आरम्भ मे समय बिताना, निद्रा मे समय बिताना, चार प्रकार की विकथा मे समय बिताना और जल आदि से शरीर की वाधाओ को दूर करना ये पाँच उपवास शिक्षाव्रत के अतीचार है ।।१९४।।

आगे उपवास व्रत मे प्रसिद्ध इन्द्र राजा को दिखाते है ।

पूर्व जन्म में इन्द्र ने, क्षणिक किया उपवास ।
सुर नर के सुख भोगकर, सप्तम भव शिववास ।।१९५

अर्थ—पूर्व जन्म में रथनपुर का राजा इन्द्र एक विशाखा पद नगर मे कुलवन्ती नाम की स्त्री थी । वह दूसरो का जूठा अन्न खाकर पेट भरती थी । एक दिन उसने अन्तर्मुहूर्त का उपवास किया । उस उपवास मे ही आयु का अन्त करके किपुरुष जाति के व्यतरो मे किन्नरी हुई । वहाँ से आयु पूर्ण कर रतननगर में गोमुख पुरुप के सहस्त्रभाग नाम का पुत्र हुआ । उसने सम्यक्त्व पूर्वक श्रावक के व्रत धारण किये और आयु पूर्ण कर शुक्र स्वर्ग मे देव हुआ । वहॉ से आयु पूर्ण कर विदेह क्षेत्र के रतनसचयपुर नगर मे मणिमत्री के सामतवर्द्ध नामक पुत्र हुआ । वह पिता के साथ मुनि होकर ग्रीवक मे अहमिन्द्र हुआ । वहॉ से आयु पूर्ण कर रथनूपुर के राजा सहस्त्रार के इन्द्र नाम का पुत्र हुआ । उसके ४८ हजार रानी हुई और इन्द्र जैसे लोक पाल आदि का वैभव मिला । अत मे वह रावण से युद्ध मे पराजित होने पर मुनिपद धारण कर निर्वाण गया । इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के उपवास का इतना अधिक फल हुआ ।।१९५।।

आगे वैयावृत्य शिक्षाव्रत का स्वरूप दिखाते है ।

रत्नत्रय साधन करें, करें न षट आरम्भ ।
उनको सेवे धारि रुचि, सो वैयावृति थंभ ।।१९६

अर्थ—जो व्रती श्रावक सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का साधन करते हो और चक्की चूलादि का आरम्भ नही करते हो उनकी और दिगम्बर मुनियो की जो पुरुप सच्ची श्रद्धा रखकर सेवा करता है वह वैय्यावृत्य का धारी कहलाता है ।।१९६।।

आगे वैयावृत्य के भेद दिखाते है ।

नमस्कार जयकार अरु, पग मलना मुनि वर्ग ।
निश दिन गुण अनुराग बहु, अरु हरना उपसर्ग ।।१९७
औषध सुध आहार अरु, थान दान श्रुत दान ।
पिछी कमंडल आदि दश, वैयावृत्ति के थान ।।१९८

अर्थ—नमस्कार करना, जयकार बोलना, चरण दबाना, गुण अनुराग रखना, उपसर्ग हरना, औषध, आहार, स्थान, जिनवाणी और पिच्छिका कमंडलादि देना ये दश वैयावृत्य के भेद हैं ।।१९७-१९८।।

आगे गुण अनुराग नाम की वैयावृत्ति का स्वरूप दिखाते है ·

मुनि दर्शन कर सुख लहे, प्रवचन सुन हर्षाय ।
मुनिचर्या लख चकित हो, गुण अनुराग कहाय ।।१९९

अर्थ—जो मुनि के दर्शन कर सुख मानता है, मुनि के प्रवचन सुन हर्ष मानता है और मुनि की निर्दोष चर्या देखकर चकित होता है, कि ऐसी उत्कृष्ट चर्या मेरे कब और कैसे हो, उसके गुण अनुराग नाम की वैयावृत्य होती है ।।१९९।।

आगे अनुराग मे प्रसिद्ध अरहदास सेठ को दिखाते है ।

अरहदास सुन मुनिनि से, आये चारण आर्य ।
भींगा गुण अनुराग में, निन्दा अपना कार्य ।।२००

अर्थ—श्री राम के समय अयोध्या मे अरहदास सेठ रहता था। एक दिन वह अपने द्वार पर मुनियों को आहार देने के लिए खड़ा था। तब चारण ऋद्धि धारी सात मुनिराजो को आया देखकर उसने विचार किया कि जिन मुनियो का यहाँ चतुर्मास हो रहा है उनमे से ये नही है। ऐसा मिथ्याविचार कर वह वहाँ से चला गया तब सेठानी ने स्वय मुनियो को पडगाह कर आहारदान दिया। जब सेठ दोपहर के पश्चात् वहाँ के मन्दिर में मुनियो के दर्शन करने गया तो सब मुनियो ने उससे कहा कि आज चारण ऋद्धि धारी मुनिराज पधारे थे तब तुम कहाँ थे। यह सुनकर सेठ ने अपने कर्मों की भारी निन्दा की और उनके गुणो मे अनुराग धर उनके दर्शनो के लिए मथुरा गया ॥२००॥

आगे जयकार नाम की वैयावृत्त का स्वरूप दिखाते हैं

मुनि आता लख खड़ा हो, ऊंचे हाथ उठाय।
जयबोले मुनि नाम की, सो जयकार कहाय ॥२०१

अर्थ—जो मुनिराज को आया देखकर शीघ्र खड़ा हो जाता है और अपने दोनो हाथों को ऊँचे उठाकर जय बोलता है उसके जय-कार नाम की वैयावृत्य होती है ॥२०१॥

आगे जयकार बोलने के स्थान दिखाते है।

मुनि बिहार या आगमन, अंत समय आहार।
आदि अंत उपदेश के, इत्यादिक हरबार ॥२०२

अर्थ—मुनि के बिहार समय, आगमन समय, आहार हो जाने के पश्चात्, धर्म-उपदेश के प्रारम्भ और अन्त समय में जयकार बोलना चाहिए और, जिस समय जितनी बार बोली जावे बोलना चाहिए। २०२॥

आगे जयकार मे प्रसिद्ध भरत को दिखाते हैं ।

सुनी भरत अतिवीर्य ने, मुनि दीक्षा ली धार ।
शीघ्र गया चढ़ अश्व पर, बोली जयजयकार ।।२०३

अर्थ—अयोध्या मे श्रीराम के भाई राजा भरत थे। जब उन्होने सुना कि जिस अतिवीर्य ने हमारे से युद्ध की ठानी थी उसको किसी नृत्यकारिणी ने चोटी पकड़ कर घुमा दिया जिससे अपमानित होकर वह मुनि हो गया । यह सुन शत्रुघन हँस पडे तब भरत ने उनको समझाया कि अब वे हमारे पूज्य हो गये है, तुमको हँसना नही चाहिये । ऐसा कहकर भरत शीघ्र ही घोडे पर चढकर अतिवीर्य मुनि के स्थान को गये वहाँ जाकर जयकार के नारे लगाये और उनकी पूजा कर अयोध्या आये ।।२०३।।

आगे नमस्कार नाम की वैयावृत्त का स्वरूप दिखाते है ।

मुनि के सन्मुख भक्ति पढ़, आठों अंग नवाय ।
उच्चारण युत नमोस्तू, नमस्कार कहलाय ।।२०४

अर्थ—जो कोई मुनि के सामने भक्ति पढकर अपने आठो अगो को नवा कर ऊँचे स्वर से नमोस्तु बोलता है उसके नमस्कार नाम की वैयावृत्य होती है ।।२०४।।

आगे आठो अगो के नाम स्पष्ट दिखाते है :

घुटने से दो पग नवें, कुहनी से दो हाथ ।
नमें कमर सिर मन वचन, भूमि विषें इक साथ ।।२०५

अर्थ—मुनि राज के चरणो में एक साथ घुटने से दोनो पैर नव जाना चाहिए, कोहनी से दोनो हाथ नव जाना चाहिए, कमर

नव जानी चाहिए सिर नव जाना चाहिए, भाव भक्ति से भर जाना चाहिए और मुख से नमोस्तु शब्द निकालना चाहिए। इस प्रकार साष्टाग नमस्कार होती है ॥२०५॥

आगे नमस्कार वैयावृत्य मे प्रसिद्ध शत्रुघन को दिखाते है।

मधु राजा रण छोड़ कर, गज पर लोंचे केश।
शत्रूघन ने बैर तज, बंदन करी विशेष ॥२०६॥

अर्थ—शत्रुघन श्रीराम का भाई था। उससे एक दिन श्रीराम ने कहा कि त्रिशूल रत्न के धारी मधु की मथुरा को छोडकर हे भाई जो राजधानी तुमको प्रिय लगे वह ले लो। इस पर शत्रुघन ने मथुरा ही मागी। तब श्री राम ने अपने सेनापति के साथ उसको बिदा किया। इनके मथुरा पहुँचने पर मधु को यह समाचार मिला किन्तु उसने अपनी वन क्रीडा न छोडी जब शत्रुघन रात्रि के समय आयुध शाला पर अधिकार कर राजा वन गया तब वह युद्ध को आया और महायुद्ध करता भया जिसमे उसका पुत्र मारा गया। तब उसने अपने को पुत्र और त्रिशूल आयुध रहित समझकर हाथी के ऊपर ही केशलोच करना प्रारम्भ कर दिया। इस दृश्य को देखकर शत्रुघन ने उसको नमस्कार किया और क्षमा याचना की ॥२०६॥

आगे पगमलने नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है।

मुनि के नीचे बैठ कर, भक्ति भाव को लाय।
चरण दबावे यथाविधि, पगमलना कहलाय ॥२०७॥

अर्थ—जो मुनि के आसन के नीचे बैठकर भक्ति-भाव के साथ उनके चरण कमलो को यथाविधि दबाता है उसके पगमलना नाम की वैयावृत्य होती है ॥२०७॥

आगे पगमलने प्रसिद्ध वज्रकर्ण को दिखाते है।

वज्रकर्ण ने पगमले, मुनि के वन में जाय।
सेवक से स्वामी भया, लच्मण राम सहाय॥२०८॥

अर्थ—दशांग नगर का राजा वज्रकर्ण था। उसको एक दिन आखेट करते समय मुनिराज मिले। वज्रकर्ण ने उनसे पूछा कि तू यहाँ क्या करता रहता है? तब मुनि बोले कि मैं यहाँ आत्म-कल्याण किया करता हूँ। राजा बोला क्या आत्म-कल्याण शरीर को कष्ट देने से होता है तब मुनि बोले 'तो क्या हिसा करने से होता है, जो कि तू सदा किया करता है।" यह सुन राजा मुनि के चरणो मे पड गया और उठकर उनके चरण मर्दन करने लगा। तब मुनि ने धर्मोपदेश दिया और कहा अब हिसा न करना, न जिन देव को छोडकर अन्य किसी को नमस्कार करना। इस नियम को लेकर राजा अपने स्थान को चला गया। वहाॅ जाकर उसने एक अंगूठी बनवाई जिसमे मुनिसुव्रतनाथ भगवान का चित्त था। उसको पहनकर वह अपने स्वामी सिहोदर को नमस्कार कर दिया करता था। उसके स्वामी को जब इस छल का पता चला तो उसने उसका गढ घेर लिया उस समय लक्ष्मण वज्रकरण के यहाॅ आये और भोजन लेकर श्रीराम के पास पहुँचे जब श्रीराम को सब समाचार सुनाया तब श्रीराम ने लक्ष्मण को समझौता के लिए भेजा परन्तु जव सिहोदर ने समझौता अस्वीकार कर दिया तब लक्ष्मण ने उसको बाँधकर श्रीराम के सन्मुख कर दिया। श्रीराम ने स्वामी को सेवक और सेवक को स्वामी बना दिया॥२०८॥

आगे उपसर्ग हरण नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है।

देव मनुज या पशू कृत, अग्नि नीर उपसर्ग।
देख श्रमण प्रति अचानक, तुरत मेटि संसर्ग॥२०९॥

अर्थ—जो किसी मुनि पर अचानक देव, मनुष्य अथवा पशुकृत उपसर्ग हो रहा हो अग्नि अथवा जलप्रवाह का उपसर्ग आ गया हो तो देखते ही उसको मेट देता है उसके उपसर्गहरण नाम की वैयावृत्य होती है ॥२०९॥

आगे उपसर्गहरण मे प्रसिद्ध श्रीराम को दिखाते है।

कुल भूषण मुनि युगल का, राम हरा उपसर्ग।
राम और गरुडेन्द्र का, वहां हुआ संसर्ग ॥२१०॥

अर्थ—श्रीराम दशरथ के पुत्र थे, जब उनके पिता ने भरत को राज्य दिया तब वे उसका समर्थन करके देशान्तर को उठ गये। एक दिन जिस मार्ग मे वे जा रहे थे उस मार्ग के सामने से बहुत से लोग पशुओ को लिए हुए आ रहे थे तब लक्ष्मण जी ने पूछा कि तुम लोग कहाँ जा रहे हो। तब लोगों ने कहा कि इस पर्वत पर कई दिनो से रात-भर घनघोर शब्द होता है जिसके कारण पशु तक बहिरे हो जाते है इस कारण शाम को चले जाते है और सुवह आ जाते है। तव सीताजी ने कहा तुम भी लौट चलो तव श्रीराम बोले तू बहुत डरती है तो चली जा हम सुवह तुझे देख लेगे। तब वह बोली कि तुम बडे हठी हो चलो मैं भी चलती हूँ तब वे वस-स्थलपर्वत पर पहुँचे वहाँ उन्होने देशभूपण और कुलभूपण मुनि-राज के दर्शन किये और गुणानुवाद गाये। जव मुनियो के पूर्व जन्म के बैरी देव ने उपसर्ग प्रारम्भ किया तव श्रीराम ने धनुप पर टकोर मारी जिसको सुनकर वह भाग गया और उसी समय दोनो मुनि-राजो को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उसकी पूजा के लिए गरुडेन्द्र भी आया उसने श्रीराम से कहा कि मेरा आपसे अधिक स्नेह है इसलिए कभी आप पर कोई आपत्ति आवे तो मुझे स्मरण करना मै तुरन्त सेवा करूँगा ॥२१०॥

आगे आहार दान नाम की वैयावृत्य को दिखाते है।

भक्ष्य अन्न जल शाक फल, दूध दही रस कोय।
मुनि को देवे शास्त्र विधि, अशन दान है सोय॥२११॥

अर्थ—जो मुनि को आहार दान के समय पर भक्ष्य अन्न, जल, शाक, फल, दूध, घी, दही और मिष्ठानादि रसो को शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बनाकर देता है उसके आहारदान नाम की वैयावृत्य होती है ॥२११॥

आगे आहारदान मे प्रसिद्ध श्रीषेणराजा को दिखाते है।

श्रीषेण राजा दिया, मुनि को भोजन दान।
सुर नर के सुख भोगि कर, भया शान्ति भगवान॥२१२

अर्थ—रत्नसचयपुर के राजा श्रीषेण थे उन्होने एक दिन आदित्य गति और अरिजय मुनि राज को भक्ति भाव से आहार दान दिया जिसके कारण राजा के यहाँ पचाचार हुए अत मे वे मरण कर उत्तम भोग भूमि मे मनुष्य भये वहाँ से स्वर्ग गये इस प्रकार द्वादश भव देव और मनुष्य के सुख भोग कर अत मे तीन पद के धारक श्री शान्तिनाथ भगवान भये ॥२१२॥

आगे औषधदान नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है।

मुनि को रोगी देखकर, भक्ष्यरु प्राशुक जोय।
औषध देवे तुरत कर, औषधदान जु सोय॥२१३॥

अर्थ—जो किसी मुनि को किसी रोग से पीडित देखकर भक्ष्य और प्राशुक औषधि तुरन्त बनाकर देता है उसके औषधिदान नाम की वैयावृत्य होती है ॥२१३॥

आगे औषधिदान में प्रसिद्ध वृषभसेना को दिखाते हैं।

पूर्व वृषभसेना दिया, मुनि को औषधदान ।
उस तन का स्नान जल, भया औषधी थान ॥२१४॥

अर्थ—पूर्व जन्म में वृषभसेना नागश्री नामक एक ब्राह्मण की पुत्री थी । वह राजा के जैन मदिर मे बुहारी देती थी । एक दिन बुहारी देते समय जिनदत्त मुनि से उसने कई बार कहा कि यहाँ से उठो मुझे बुहारी देना है किन्तु वे उस समय ध्यानस्थ थे इस कारण न बोले न उठे । तब उसने क्रोधित होकर उनको कूडे से ढक दिया । जब प्रात काल राजा मदिर मे दर्शनो को आया तो उसने गड्ढे मे कूडा हिलते देखा तब उसने उस कूडे को अलग करके देखा तो उसमे मुनिराज विराजे थे । यह देखकर राजा ने उनको बाहर निकाला और उनकी पूजा की । यह देख नागश्री ने अपने कृत्य की महानिंदा करके उनसे क्षमा मागी और उनको प्राशुक औषधि देकर निरोग किया अत मे वह मर कर उसी ग्राम मे धनपति सेठ के वृपभसेना नाम की पुत्री हुई उसके स्नान का जल जहाँ इकट्ठा था वहा एक रोगी कुत्ता गिरकर निरोगी हो गया । यह देख उसकी धाय ने अपनी माँ की धुधली आँखो से लगाया तो उसको अच्छा दीखने लगा । यह समाचार सर्वत्र फैल गया । जब राजा और मत्री सेना को लेकर मेघपिंगल को जीतने गये तो मेघपिंगल ने अपने सब कुओ मे विप डलवा दिया जिसको पीकर वे सब बीमार होकर पीछे आये । तव उन्होने भी यह समाचार सुना और उस जल का प्रयोग किया तो वे सब निरोगी हो गये । तव उस राजा ने वृपभसेना के साथ विवाह कर पटरानी बना लिया और सब कैदियो को छोड दिया किन्तु वनारस के राजा को न छोडा । जब बनारस की रानी ने वृषभसेना के नाम से अपने यहाँ दानशाला खोली तब वृपभसेना ने उसको भी छुड़वा दिया । यह सुनकर मेघपिंगल भी उसका सेवक बन गया । एक दिन

राजा की भेट में दो वस्त्र आये सो राजा ने एक वृषभसेना को और एक मेघपिगल को दे दिया। किसी दिन मेघपिगल की स्त्री उसको पहनकर वृषभसेना के यहाँ आई तो वे वस्त्र बदल गये और वृषभसेना का वस्त्र मेघपिगल पर देखा तब राजा ने वृषभसेना के शील मे दोष लगाकर उसको गहरे जल मे पटकवा दिया तब जल देवी ने उसे एक सिहासन पर बैठाकर उसकी जयकार बोली जिसको देख राजा ने अपनी भूल स्वीकार की किन्तु वृषभसेना ने पूर्व ही यह नियम ले लिया था कि इस आपत्ति से बचूगी तो मैं अर्जिका बन जाऊँगी सो उसने वह ही किया अत मे वह स्वर्ग मे देव हुई ॥२१४॥

आगे शास्त्रदान नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है।

मुनि को अक्षर ज्ञान या, श्रुत का ज्ञान कराय।
शास्त्र देहि स्वाध्याय को, सो श्रुत दान कहाय॥२१५॥

अर्थ—जो किसी मुनि को अक्षर ज्ञान करा देता है, श्रुतज्ञान (अनुयोगरूप जिनवाणी) करा देता है स्वाध्याय के लिए कोई आचार्यप्रणीत शास्त्र देता है अथवा उनके द्वारा बने शास्त्र का प्रचार कर देता है उसके शास्त्रदान नाम की वैयावृत्य होती है॥२१५॥

आगे शास्त्रदान मे प्रसिद्ध कोडेस को दिखाते है।

शास्त्रदान ग्वाला दिया, भया नृपति कोंडेश।
श्रुत केवलि वह नृप भया, धर के मुनि का भेष॥२१६॥

अर्थ—कुरुमरी ग्राम मे एक गोविन्द नाम का ग्वाला रहता था। उसको एक वृक्ष की पोल मे एक जैन शास्त्र मिला उसे वह अपने घर ले आया और उसकी पूजा करने लगा। एक दिन उसको

पद्मनदि मुनि के दर्शन हुए तब उसने उस शास्त्र को उनको दे दिया उन्होने उसका बहुत दिन तक अध्ययन किया अत मे वे उसी स्थान पर रखकर चले गये तब वह ग्वाला उसकी फिर पूजा करने लगा इस बीच मे उसको एक सर्प ने काट लिया जिससे वह मरकर उसी ग्राम मे एक पटेल के पुत्र हुआ जब उसने उन पद्मनदि मुनि के दर्शन किये तो वह मुनि हो गया आयु के अत मे वह कोडेश राजा हुआ एक दिन वह ससार को असार जान मुनि बन गया और थोडे ही काल में वह शास्त्रदान के प्रभाव से श्रुतकेवली हो गया ।।२१६।।

आगे स्थान दान नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है ।

लख प्राशुक एकान्त अरु, निरबाधा स्थान ।
मुनि को ठहरावे वहाँ, थान दान पहिचान ।।२१७।।

अर्थ—जो प्राशुक, एकान्त और निर्बाधा स्थान देखकर मुनिराज को ठहरा देता है और उनकी सब प्रकार की वैयावृत्य करता है उसके स्थान दान नाम की वैयावृत्य होती है ।।२१७।।

आगे स्थान दान मे प्रसिद्ध सूअर को दिखाते हैं ।

थान दान सूअर दिया, सिंह लड़ा तब आय ।
सूअर मर कर स्वर हुआ, सिंह नरक को धाय ।।२१८।।

अर्थ—घट ग्राम मे एक देवल नाम का कुम्हार और धर्मल नाम का नाई रहता था । उन दोनो ने एक धर्मशाला बनवाई जब देवल ने धर्मशाला मे मुनि को ठहराया तब धर्मल ने मुनि को बाहर निकाल दिया इस बात पर उन दोनो मे लडाई हुई जिससे मरकर देवल का जीव सूअर और धर्मल का जीव सिह हुआ । जिस गुफा मे

सूअर रहता था उस गुफा में एक दिन समाधिगुप्ति और त्रिगुप्ति नाम के दो मुनिराज ठहर गये यह देखकर सूअर को जातिस्मरण हो गया जिससे वह शात हो गया और वह सिह का जीव मनुष्य की गंध पाकर उस गुफा की ओर आया और दोनो मुनियो को भक्षण करना चाहा इस बात पर सिह और सूअर की लडाई हुई जिससे मरकर सूअर स्वर्ग मे देव हुआ और सिह मरकर नरक मे नारकी भया ॥२१८॥

आगे उपकरण नाम की वैयावृत्य का स्वरूप दिखाते है।

पीछी अथवा कमंडल, मुनि पर जीरण जान।
जो नवीन देवे तुरत, वही उपकरण दान ॥२१६॥

अर्थ—जो किसी मुनि पर पिच्छिका अथवा कमडल जीर्ण देखकर नवीन मगाकर उनको तुरत देता है उसके उपकरणदान नाम की वैयावृत्य होती है ॥२१६॥

आगे उपकरण दान मे प्रसिद्ध कीर्तिधर राजा को दिखाते है।

कीर्ति नृपति मुनि को दिया, पिछी कमंडल दान।
लोक प्रसंशा पायकर, पाया स्वर्ग विमान ॥२२०

अर्थ—पट्टन नगर का राजा कीर्तिधर था। वह हाथी पकडकर अपने नगर की ओर आ रहा था। जब वह विंध्याचल पर्वत की तलहटी मे आया तो अचानक एक शिला पर श्रीधर मुनिराज को देखकर उनके चरणों मे पड गया और अपने को धन्य मानता भया। जब राजा की दृष्टि मुनिराज के जीर्ण पिच्छिका और कमडल पर पडी तब उसने अपने नगर से नवीन पिच्छिका और कमडल मगवा-कर मुनिराज को दिये और आप स्वय तब तक मुनिराज की सेवा करता रहा। यह देख कर वहाँ का निवासी देव उस राजा पर

वहुत प्रसन्न हुआ और देवोपुनीत वस्त्रभूषण से उसे सुशोभित किया। अत मे मुनिराज विहार कर गये और राजा अपने नगर मे जाकर नवीन पिच्छिका और कमडल बनवाकर अन्य मुनियो को दान करता भया। और प्रतिवर्ष इसी तरह पिच्छिका और कमडल देता रहा और आयु के अन्त मे इस दान के प्रभाव से वह राजा स्वर्ग में देव हुआ ॥२२०॥

आगे सूतक पातक मे कुछ वैयावृत्य वर्जित दिखाते हैं।

शास्त्र उपकरण औषधी, पगमलना आहार।
सूतक पातक के विषें, इन तज शेष सँभार ॥२२१

अर्थ—जव श्रावक को सूतक अथवा पातक लग जावे तव उसको शास्त्र, उपकरण, औपधि, चरणमर्दन और आहारदान ये पाँच प्रकार की वैयावृत्य नही करना चाहिए। शेप करना योग्य है। कारण कि शेप वैयावृत्यो मे शरीर का स्पर्श नही होता है ॥२२१॥

आगे सूतक मर्यादा दिखाते है—

सूतक दश दिन जन्म का, तीन पिढी तक चीन।
चौथी आधा शेष पिढि, एक एक दिन हीन ॥२२२
अरु द्वादश दिन मरण का, तीन पिढि तक मान।
चौथी आधा शेष पिढि, एक एक दिन हान ॥२२३
जने मरे पर देश में, सूतक खवर परांहि।
सूतक लगे न जाति च्युत, घर विरक्त का नांहि ॥२२४
इक दिन वालक वर्ष भर, आठ वर्ष तक तीन।

पनमासादिक गर्भक्षय, पाँचदिनादिक चीन ॥२२५
गर्भवती मुनिदान को, प्रथम मास से मान।
घर भोजन पन मास से, आगे सूतक जान ॥२२६
जननि डेढ त्रय मास तक, घर भोजन मुनिदान।
रजस्वला दिन पांच का, कुलटा सूतक खान ॥२२७
घर में कोई पशु जने, मरे एक दिन मान ।
पुत्री आदिक घर जने, मरे तीन दिन जान ॥२२८
दाह क्रिया में जाय वा, केश बनावे कोय ।
उस पूरे दिन का उसे, सूतक लागे जोय ॥२२९

अर्थ—घर में रहने वाले श्रावक को जन्म का तीन पीढ़ी तक १० दिन का, मरण का तीन पीढी तक १२ दिन का, चौथी पीढी को उपरोक्त दिनो से आधे दिनो का, शेष पीढी को एक एक दिन कम का, परदेश में अपने परिवार के किसी का जन्म हो अथवा मरण हो समाचार मिलने पर सूतक होता है। जाति च्युत का सूतक नही लगता। घर विरक्त त्यागी का सूतक नही होता, एक वर्ष तक के बालक के मरण का १ दिन का, आठ वर्ष तक के बालक के मरण का ३ दिन का, पाचमहिनादि के गर्भक्षय का पाच दिनादि, गर्भवती स्त्री को मुनिदान के लिये प्रथम मास से और घर भोजन के लिये ५ मास के पश्चात्, जननी स्त्री को मुनिदान के लिये ३ मास तक और घर भोजन के लिये १॥ मास तक, रजस्वला स्त्री को ५ दिन का, कुलटा स्त्री को सदा, अपने घर मे कोई चौपाया पशु जन्मे अथवा मरे एक दिन का, अपने घर में कोई पुत्री आदि प्रसव करे अथवा मरे तो तीन दिन का, मृतक को उठाने जावे

अथवा बाल बनवाये तो उसे पूरे दिन का सूतक लगता है ।।२२२-२२६।।

आगे पातक मर्यादा दिखाते है ।

परनारी हर लाय या, मारे या मर जाय ।
पातिक लागे कुटम्ब को, जब तक न्याय न थाय ।।२३०

अर्थ—जो किसी की परनारी को हरकर ले आता है, स्वय किसी के ऊपर अपघात कर मर जाता है, किसी चौपाये पचेन्द्रिय पशु अथवा मनुष्य की हत्या कर डालता है तो उसको और उसके सम्बन्धी कुटुम्ब को जब तक उस जाति की प्रमुख समाज न्याय न करे तब तक पातक लगा रहता है ।।२३०।।

आगे वैयावृत्य का फल दिखाते है ।

जैसे जल मल को हरे, तैसे मुनि सम्मान ।
घर धन्धे संचय हुये, करे पाप की हानि ।।२३१

अर्थ—जैसे जल मल को दूर कर देता है तैसे मुनियो की वैयावृत्य श्रावको के चक्की चूलादि गृह पट कर्मो मे सचय हुये पापो को नाश करती है ।।२३१।।

आगे उसी आशय को दूसरी तरह से दिखाते है ।

श्रमण नमें से ऊँच कुल, रूप भक्ति से होय ।
मान दास्य अरु कीर्ति श्रुति, भोग दान से होय ।।२३२

अर्थ—मुनियो को नमस्कार करने से उच्चजाति, कुल मिलता है, भक्ति करने से सुन्दर शरीर मिलता है, दान के देने मे भोगोपभोग की प्राप्ति होती है, सेवा करने से पूज्य पद प्राप्त होता है और उनकी स्तुति करने से जगत मे कीर्ति फैलती है ।।२३२।।

आगे अल्प भक्ति को बहुफलदायक दिखाते है ।

गिरा भूमि वट बीज जिमि, बहु छाया को देय ।
श्रमण भक्तित्यों अल्प हू, इष्ट लाभ बहु देय ॥२३३

अर्थ—जिस प्रकार अच्छी पृथ्वी में बोया हुआ छोटा बड़ का बीज बहुत छाया देता है उसी प्रकार मुनि की थोड़ी भी भक्ति बहुत इष्ट सुख को देती है ॥२३३॥

आगे वैयावृत्य के अतीचार दिखाते हैं ।

वांछा लज्जा मान वश, अर्पित वस्तू चार ।
क्रिया भूल युत दोषपन, वैयावृति के टार ॥२३४

अर्थ—लौकिक फल की इच्छा से देना, लोक लाज से प्रेरित होकर देना, ख्याति की कामना से देना, अन्य के निमित्त किया हुआ द्रव्य देना और किसी विनयादि क्रिया की भूल करके दान देना ये पाँच वैयावृत्य के अतीचार है ॥२३४॥

॥ व्रतप्रतिमाधिकार समाप्त ॥

आगे पूजन प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है ।

तन मन वाणी अरु अशन, अष्ट द्रव्य कर शुद्ध ।
प्रतिदिन जिन पूजन करे, पूजन प्रतिमा बुद्ध ॥२३५

अर्थ—जो पुरुष पूर्व प्रतिमाओ के साथ प्रतिदिन शुद्ध वस्त्र पहन कर मन, वचन और कार्य की शुद्धतापूर्वक श्री जिनेन्द्र भगवान की प्राशुक अष्ट द्रव्य से भक्ति वन्दना के साथ पूजा करता है उसके पूजन नाम की तीसरी प्रतिमा होती है ॥२३५॥

आगे पूजन मे प्रसिद्ध मेढक को दिखाते है।

जिन पूजन को पुष्प ले, दादुर आतुर धाय ।
मग में मरकर सुर हुआ, महिमा रहा दिखाय ॥२३६

अर्थ—राजगृही नगरी मे नागदत्त नाम का सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम भवदत्ता था। वह एक दीपक जलाकर सेठ के स्थान पर रख दिया करती थी। सेठ प्रतिदिन जब तक दीपक जलता था तव तक सामायिक करता था। एक दिन जब दीपक वुझने को आया तव उसकी नवीन आई हुई पुत्र-वधू ने उस दीपक मे तेल डाल दिया और फिर वुझने को आया तव फिर डाल दिया। इस तरह वह सारी रात तेल डालती रही जिससे न दीपक बुझा न सेठ उठा। जव सेठ न उठा तव उसका प्यास से कठ सूख गया जिसके कारण वह सक्लेश भाव से मर कर अपनी बावडी मे मेढक हुआ। जब सेठानी बावडी मे पानी भरने जावे तव वह उछल २ कर उसके ऊपर पडे। एक दिन सेठानी ने मुनिराज से पूछा तो उन्होने कहा कि वह तेरा पति है यह सुनकर उसने अपने घर मे एक छोटा सा जलाशय वनाकर उस मेढक को उसमे रख लिया। जव राजा श्रेणिक ने महावीर भगवान के दर्शनो की तैयारी की तव मेंढक भी वहाँ से निकल कर कमल की पाखुडी लेकर चल पडा सो थोडी दूर चलकर राजा श्रेणिक के हाथी के पैर के नीचे दव गया और मर कर स्वर्ग मे देव हुआ। वहाँ से वह अपने मुकुट मे मेढक का चिन्ह बना कर भगवान के समव शरण मे राजा श्रेणिक से पहिले पहुँच गया। उसको देखकर राजा श्रेणिक ने भगवान से प्रश्न किया कि इस देव के मुकुट मे मेढक का चिन्ह कैसा है। तव भगवान की वाणी से सवको ज्ञात हुआ कि जिन पूजन की अनुमोदना से मेंढक देव हुआ तव पूजन नाम की तीसरी प्रतिमा धारण करने से क्या फल न होगा ॥२३६॥

आगे स्वाध्याय प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है।

आदि सहित अरु अंत तक, विनय सहित प्रतिवार।
जो करता स्वाध्याय को, तिसके प्रतिमा चार ।।२३७

अर्थ—जो पूर्व प्रतिमाओ के साथ प्रतिदिन विनयपूर्वक स्वाध्याय काल मे आचार्य प्रणीत ग्रन्थो की मनन के साथ स्वाध्याय (पढकर अथवा सुनकर) करता है उस पुरुप के स्वाध्याय नाम की चौथी प्रतिमा होती है ।।२३७।।

आगे स्वाध्याय मे प्रसिद्ध पात्र केशरी को दिखाते है।

पात्र केशरी विप्र ने, सुनि मुनि से इक छन्द।
मिथ्यातम को वमन कर, पाया समकित चन्द ।।२३८

अर्थ—अहिक्षत्र नगर मे पात्र केशरी नाम का ब्राह्मण था। वह पाँच सौ विद्वान ब्राह्मणों में प्रधान था। एक दिन ये सब पार्श्वनाथ जिनालय में चारित्रभूषण मुनिराज के पास गये। उस समय वे भगवान के सामने स्तोत्र पढ रहे थे। तब पात्र केशरी ने मुनिराज से पूछा कि क्या आप इसका अर्थ भी जानते है ? यदि नही जानते हो तो हम बतावे, दुबारा पढो। तब मुनिराज ने दुबारा पढ दिया, उसे सुनकर पात्र केशरी ने अपनी विलक्षण बुद्धि से तुरन्त कण्ठस्थ कर लिया और उसका अर्थ विचारने लगा, अर्थ विचारते विचारते वह मिथ्यात्व को वमन कर सम्यक् दृष्टि बन गया, इससे वे सब ब्राह्मण रुष्ट हो गये और उन्होंने राजा अवनिपाल की सभा में विवाद किया, जिसमे वे सब पात्र केशरी से हार गये और उसके फलस्वरूप राजा अवनिपाल और वे पाँच सौ ब्राह्मण जैनी बन गये। जब सुनने मात्र से इतनी निर्मलता हुई तो स्वाध्याय नाम की चौथी प्रतिमा धारण करने से कितनी निर्मलता न होगी ।।२३८।।

आगे सचित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है।

भक्ष अन्न जल हरित में, जो सचित्त कहलाय।
सचित त्याग प्रतिमा विषें, भूल न कच्चे खाय ।।२३९

अर्थ—जो पूर्व प्रतिमाओ के साथ भक्षण करने योग्य सचित अन्न, सचित जल और हरे साक फलो को प्राशुक करके खाता है उसके सचित्तत्याग नाम की पाँचवी प्रतिमा होती है ।।२३९।।

आगे सचित्तत्याग मे प्रसिद्ध धनदेव को दिखाते है ।

कच्चे जल का त्याग कर, धन देवी धन देव ।
आर्या अरु मुनि होय कर, भये देवि अरु देव ।।२४०

अर्थ—वैजयन्ती नगरी मे एक धनदेव सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम धनदेवी था। एक दिन इन दोनो ने यशोधर मुनिराज को आहार दिया, आहार के पश्चात् मुनिराज ने कहा कि तुम दोनो कुछ व्रत धारण करो, तव इन दोनो ने कहा कि हमसे व्रत नही पल सकता। तव मुनिराज ने इनको महाभोगी जानकर कहा कि तुम कच्चा जल न पिया करो, यह व्रत उन दोनो ने स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वीकार कर लिया, और वे उसी दिन से गर्म जल पीने लगे। उस गर्म जल के पीने से उनके भोग-विलासो की इच्छा कम होती गई और धर्म से प्रीति वढती गई, इससे एक दिन इन दोनो ने विचार किया कि त्याग तो केवल कच्चे जल का है और कच्ची कोई वस्तु खाते नही फिर सचित्त-त्याग नाम की पाँचवी प्रतिमा क्यो न धारण करली जाय ? अत. उन्होने वैसा ही किया और उसे निरतिचार पालन करने लगे। ऐसा करने से कुछ समय के पश्चात् इनका आहार एक वार का स्वय बन गया कारण विधि से आहार बनाने और लेने मे समय अधिक लगता है। एक वार का आहार हो जानें से और पुत्रादि समर्थ हो जाने से वे दोनो मुनि और अर्जिका वन गये। अन्त मे वे स्वर्ग मे देव और देवी हुये इसलिये सचित्त-

त्याग नाम की पाँचवी प्रतिमा अवश्य धारण करना चाहिये ॥२४०॥

आगे प्रतिक्रमण प्रतिमा का स्वरूप दिखाते है ।

निशदिन का हर पर्व में, वर्षा वर्ष अखीर ।
प्रतिक्रमण अतिचार का, करता षट पद वीर ॥२४१॥

अर्थ—जो पुरुष पूर्व प्रतिमाओ के साथ रात्रि और दिवस के लगे हुये अतीचारो का प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी के दिन प्रतिक्रमण करता है, वर्पाकाल में लगे हुए अतीचारो का वर्पाकाल की अतिम चतुर्दशी के दिन प्रतिक्रमण करता है और प्रत्येक वर्ष मे लगे हुए सब अतीचारो का दीक्षा लेने के दिवस प्रतिक्रमण करता है उस पुरुष के प्रतिक्रमण नाम की छठवी प्रतिमा होती है ॥२४१॥

आगे प्रतिक्रमण मे प्रसिद्ध राजा यम को दिखाते है ।

मुनि निन्दा यम ने करी, भया तुरत अज्ञान ।
निज निन्दा कर मुनि भया, पाई ख्याति महान ॥२४२

अर्थ—धर्मपुर नगर मे यम नाम का राजा राज्य करता था । उसके नगर मे एक समय पाँच सौ मुनियो के सघ सहित सुधर्माचार्य पधारे, उनकी पूजा के लिये नगर के लोग गये । तब राजा यम अपनी विद्वत्ता के गर्व में आकर मुनियो की निन्दा करता हुआ आचार्य के पास गया । वहाँ पहुँचते ही उसकी विद्वत्ता नष्ट हो गई जब विद्वत्ता नष्ट हुई तव वह अपनी महा निन्दा करता हुआ आचार्य के चरणो मे पड गया और अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर शेष पाँच सौ पुत्रो सहित मुनि बन गया और उनके साथ स्वाध्याय करने लगा किन्तु उसके सब पुत्र स्वाध्याय करके ज्ञानी बन गये और उसको मुनि निन्दा के पाप से कुछ भी ज्ञान न हुआ जिसके कारण वह आचार्य से आज्ञा माँगकर तीर्थयात्रा को निकल गया ।

तीर्थयात्रा और प्रतिक्रमण करते-करते वह महाज्ञानी बन गया जिससे उसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। जब प्रतिक्रमण से मुनि निन्दा जैसे पाप नष्ट हो जाते है तब अन्य पाप कैसे रह सकते है, इसलिये भव्य जीवो को प्रमाद छोडकर प्रतिक्रमण नाम की छठी प्रतिमा अवश्य धारण करना चाहिये ॥२४२॥

आगे ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप दिखाते हैं।

निज तिय भी भव हेतु लख, लेवे चित्त हटाय।
उसको तज जो थिर रहे, सो सप्तम पद पाय ॥२४३॥

अर्थ—जो पूर्व प्रतिमाओ के साथ परनारी तो दूर की बात है अपनी विवाहित स्त्री को भी ससार का कारण जानकर अपना चित्त उस स्त्री से हटा लेता है और उस स्त्री को त्याग कर जो अपने लिये हुये व्रत मे सदा स्थिर रहता है उसके ब्रह्मचर्य नाम की सप्तम प्रतिमा होती है ॥२४३॥

आगे ब्रह्मचर्य मे प्रसिद्ध गगेय को दिखाते है।

ब्रह्मचर्य गंगेय धर, पिता भक्त को ठान।
युद्ध क्षेत्र में मरण कर, पाया स्वर्ग विमान ॥२४४॥

अर्थ—गगेय पाँडवों के बाबा के बडे भाई थे। वे बडे न्यायवान और वीर पुरुष थे। एक दिन इनके पिता पारासर ने यमुना के किनारे एक धीमर के यहाँ गुणवती नाम की कन्या नाव चलाते देखी और व मोहित हो गये। तब धीमर से पूछा कि सच-सच कहो यह कन्या किसकी है तब धीमर बोला मैंने इसको पाला है मुझे तो मार्ग में पड़ी मिली किन्तु जब मैंने इसको उठाया तब आकाशवाणी हुई कि यह कन्या रत्नपुर के राजा रत्नागद की पुत्री है। किसी विद्याधर ने वैर वश यहाँ डाल दी है यह सुन

को हिंसा से भरा हुआ जानता था। फिर राज्य कार्यो को तो वह महापाप समझता था इस कारण उसने अपने पुत्र (इन्द्र) को सब राज्य भार दे दिया था और आप उदासीन श्रावक बनकर घर पर ही रहने लगा था। जब जब इन्द्र युद्ध के लिये तैयार होता था तब तब वह रोक दिया करता था। जब रावण ही इन्द्र पर चढकर आया तब भी उसने बहुत समझाया कि युद्ध मत करो और सधि करलो। किन्तु इन्द्र ने नही मानी और युद्ध किया जिसके फलस्वरूप वह रावण के द्वारा पकडा गया जब सहस्रार इन्द्र को छुडाने के लिए रावण के पास गया तब रावण ने सहस्रार को उदासीन श्रावक जानकर बहुत सत्कार किया और इन्द्र को तुरन्त छोड दिया अन्त में सहस्रार स्वर्ग मे देव हुआ। जब आरम्भ की उदासीनता मात्र से इतना फल प्राप्त हुआ तब आरम्भ त्याग नाम की आठवी प्रतिमा के धारण करने से क्या २ फल न होगा ॥२४६॥

आगे परिग्रहत्याग प्रतिमा का स्वरूप दिखाते हैं।

बारह की दश उपधि से, ममता मोह विडार।
जो निशल्य हो त्यागता, सो नव प्रतिमाधार ॥२४७

अर्थ—जो पुरुष धोती दुपट्टा के अतिरिक्त बाहर की दश प्रकार की धन धान्यादि परिग्रहो को निशल्य होकर सदा के लिये त्याग देता है उसके परिग्रहत्याग नाम की नवमी प्रतिमा होती है ॥२४७॥

आगे परिग्रहत्याग मे प्रसिद्ध गुरु को दिखाते है।

शिष्य जगो भय आ गई, कहें गुरू हर वार।
कहे शिष्य भय कुँआं में, सोवो पांव पसार ॥२४८

अर्थ—गंगा के किनारे एक मठ मे गुरु और शिष्य रहते थे। गुरू ने भिक्षा वृत्ति द्वारा एक सोने की ईंट बनवा ली थी इस

चोर ने लूटी मात मुनि, रोवें कुक्षा कूट।
मुनि माता लख चोर वर, लौटाई सब लूट ॥२५०

अर्थ—एक मुनिराज एक भयकर अटवी मे जा रहे थे कि अचानक उनको जाते से चोरो ने रोक लिया। जब चोरो का सरदार आया, तो उसने चोरो से पूछा कि इनको क्यो रोका ? तव चोर बोले कि ये आगे पथिको को सचेत कर देंगे यह सुन चोरो के सरदार ने कहा कि तुमको ज्ञात नही ये किसी से कुछ नही कहते अत छोड दो। तब मुनि वहाँ से चल दिये आगे उन मुनिराज की माँ वहुत धन के साथ अपनी लडकी के विवाह करने के लिये आ रही थी जव मुनि को उसने सामने आते देखा तो वह रथ से उतर कर मुनि के चरणो मे पड़ गई और पूछने लगी कि आगे चोर तो नही मिलेगे ? तब वे कुछ न बोले इससे उस माँ ने जान लिया कि आगे चोर नही है जब वह आगे बढी तो चोरो ने सब धन छीन लिया। तब वह माँ अपनी कूँख पीटने लगी कूँख पीटते हुए चोरो के सरदार ने पूछा कि सब कोई तो छाती पीटते है तू कूँख क्यो पीटती है तव उसने कहा कि मेरे कूँख मे उपजे पुत्र ने मुझसे यह नही बताया कि आगे चोर है। तब उसने कहा कि क्या तू मुनि की माता है। तब उसने कहा कि हाँ। यह सुन चोरो के सरदार ने सब धन लौटा दिया और पुत्री के विवाह के लिए और भी वहुत धनादि देकर उसके स्थान तक पहुँचा दिया और आप उस अनुमति त्याग के प्रभाव से उन मुनिराज के पास मुनि वन गया। इसलिये अनुमति त्याग नाम की दशमी प्रतिमा अवश्य धारण करना चाहिये ॥२५०॥

आगे भिक्षाहार प्रतिमा के भेद और स्वरूप दिखाते है।

प्रतिमा भिक्षाहार में, क्षुल्लक ऐलक भंग।
घर को तज दीक्षा धरे, भिक्षा भोजन अंग ॥२५१॥

पूर्व कहे सब श्वेत पट, क्षुल्लक ऐलक पास।
भोजन शुद्धी मात्र को, वस्त्र दूसरा खास ।।२५४।।

अर्थ—उपरोक्त कहे हुये क्षुल्लक और ऐलक के पास वस्त्र सब श्वेत रग के होते है अन्य रग के नही होते किन्तु एक-एक वस्त्र के अतिरिक्त भोजन करने को जाते समय वस्त्र बदलने के लिये एक-एक श्वेत वस्त्र और होता है ।।२५४।।

आगे क्षुल्लक ऐलक की भोजन विधि दिखाते है।

ऐलक भोजन कर विषें, क्षुल्लक दाता पात्र।
शूद्र अशन निज पात्र में, लख इक घर कुल दातृ।।२५५।।

अर्थ—एक कुलीन श्रावक का घर देखकर ऐलक अपने हाथो मे भोजन करता है, द्विज क्षुल्लक दातार के दिये हुये एक छोटे पात्र मे भोजन करता है और शूद्र क्षुल्लक अपने पात्र मे भोजन करता है ।।२५५।।

आगे क्षुल्लक ऐलक के उपकरण दिखाते है।

काठ कमंडल मोर पिछि, द्विज भेषी के लार।
लोह पात्र दो शूद्र पर, टोटी आगे राख ।।२५६।।

अर्थ—ऐलक और द्विज क्षुल्लक पर काठ का कमडल और मोरपिच्छिका होती है और शूद्र क्षुल्लक पर लोहे का एक कमडल, लोहे का एक कटोरा और पिच्छिका के स्थान पर एक कपड़े का टुकडा होता है तथा उन कमडलो की टूटी आगे को रक्खी जाती है ।।२५६।।

आगे उनके लिये भक्तियाँ दिखाते है।

उपचार दिखाया है। वास्तव में तो मूलगुण दिगम्बर मुनियो के ही होते है ॥२५६॥

आगे इनके वस्त्र दूषण से उग्रतप वर्जित दिखाते है।

वर्षा तरु ग्रीषम शिखर, शीत न तप जल तीर।
किसी थान खडगासना, धर न ध्यान रख चीर ॥२६०॥
त्रिभक्त शैयासन न तप, व्रतसंख्यान न कोय।
काय क्लेश न तप तपे, पट दूषण को जोय ॥२६१॥

अर्थ–क्षुल्लक और ऐलक वर्षा ऋतु मे वृक्ष के नीचे, ग्रीषम ऋतु मे पर्वत की शिखर पर, शीत ऋतु मे चौपट स्थान मे, नदी अथवा सरोवर के तीर और किसी भी स्थान पर खडगासन ध्यान करना वस्त्र दूषण के कारण वर्जित है। व्रतपरिसख्यान, विभक्तशैयासन और काय-क्लेश तप करना वस्त्र दूपण के कारण वर्जित है। ये सब तप सामान्य मुनियो को छोडकर महामुनियों को अन्त समय करने योग्य है ॥२६०-२६१॥

आगे क्षुल्लक पद मे प्रसिद्ध प्रथम और पश्चिम को दिखाते है।

प्रथम रु पश्चिम रंक द्वय, धर क्षुल्लक पद थान।
इन्द्र जीत अरु मेघ ह्वै, पायो पद निर्माण ॥२६२॥

अर्थ—कौसम्वी नगरी मे प्रथम और पश्चिम दो भाई रहते थे। एक दिन इसी नगर मे भवदत्त मुनिराज पधारे सो ये दोनो भाई उनके दर्शन कर क्षुल्लक बन गये। इसके पश्चात् मुनिराज के दर्शनो के लिए इसी नगर का राजा इन्द्र और नन्दी सेठ आये। नन्दी सेठ के सौभाग्य को देखकर पश्चिम क्षुल्लक ने निदान किया कि मैं पर भव मे इस सेठ का पुत्र बनूं। इस पर बडे भाई प्रथम ने

दर्शन प्रतिमा धरे भी, गुण थल एक रहाय।
चर्या पाले तुरिय की, इससे तुरिय कहाय ।।२६४।।
इसी तरह व्रत आदि में, गुण थल एक रहाय।
चर्या पाले पाँच की, इससे पाँच कहाय ॥२६५॥

अर्थ—जो कोई मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन प्रतिमा को धारण कर लेता है तो भी उसके निश्चय नय से मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है किन्तु वह व्रतचर्या चतुर्थ गुणस्थान (दर्शन-प्रतिमा) की पालता है। इस कारण व्यवहार नय से चतुर्थ गुणस्थान वाला सम्यक् दृष्टि श्रावक कहलाता है। इसी तरह वह व्रत प्रतिमा से लेकर भिक्षाहार प्रतिमा तक धारण कर लेता है तो भी निश्चयनय से मिथ्यात्व गुणस्थान ही रहता है किन्तु वह व्रतचर्या पाँचवे गुणस्थान (अणुव्रत) की पालता है। इस कारण व्यवहार नय से पाँचवे गुणस्थान वाला व्रती श्रावक कहलाता है। कारण निश्चय नय से मिथ्यात्व और अनन्तानुवधी के अनुदय से चतुर्थ और अप्रत्याख्यान के अनुदय से पाँचवाँ गुणस्थान होता है और व्यवहार नय से दर्शन प्रतिमा धारण करने से चतुर्थ और व्रत आदि प्रतिमा धारण करने से पाँचवाँ गुणस्थान कहलाता है ।।२६४-२६५।।

आगे प्रतिमा धारण करने की रीति दिखाते हैं।

साधि मूल गुण वल वढ़ा, पाक्षिक प्रतिमा साधि।
नैष्ठिक साधक साधि कर, सुनि ह्वै अंत समाधि।।२६६।।

अर्थ—जो पुरुष क्रमसे पहिले कुछ काल मूल गुणो का भली-भाँति पालन कर, कुछ काल पाक्षिक प्रतिमा का अभ्यास करके, कुछ काल पाक्षिक प्रतिमा धारण करके, कुछ काल नैष्ठिक और साधक प्रति-

बड़ पीपल अरु कठूमर, ऊमर फल अंजीर ।
ये पाँचों फल उदम्बर, कहे माँसवत् वीर ॥२६९॥

अर्थ—वडफल, पीपलफल, कठूमर फल, ऊमर फल और अजीर फल इन पाँचो फलो को श्री महावीर जिनेन्द्र ने मॉस के समान बतलाये है ॥२६९॥

आगे जो अणुव्रतादि ग्रहण नही कर सकते उनको दिखाते है ।

आयु बंध जिसने किया, नर नारक तिर्यंच ।
अणु-व्रत मह-व्रत ग्रहण के, भाव न होवें रंच ॥२७०॥

अर्थ—जिस मिथ्यादृष्टि मनुष्य ने नरक, तिर्यंच अथवा मनुष्य-आयु का बध कर लिया है उसके अणुव्रत अथवा महाव्रत ग्रहण करने के रच मात्र भी भाव नही होते इस कारण आयु बध न हो उसके पूर्व ही अणुव्रतादि ग्रहण कर लेना चाहिये ॥२७०॥

आगे जो क्षायिक श्रेणी ग्रहण नही कर सकते उनको दिखाते है ।

जिसने पूरब कर लिया, देव आयु का बंध ।
क्षायिक श्रेणि न वह चढ़े, ऐसा स्वतः प्रबंध ॥२७१॥

अर्थ—जिस मनुष्य ने पहिले देव आयु का बंध कर लिया है वह क्षायिक श्रेणी नही चढ़ सकता कारण आयु कर्म बध जाने पर उदय मे अवश्य आता है ॥२७१॥

आगे अबध आयु वाले को स्वतत्र दिखाते है ।

मिथ्यात्वी सत् दृष्टि या, अणुधर या मुनिकोय ।
आयु बंध के भये बिन, जस मति तस गति होय ।२७२।

अथ—किसी से बैर हो तो उस बैर को छोड देना चाहिये, किसी से मित्रता हो तो उस मित्रता को छोड देना चाहिये और अपने पास कुछ परिग्रह हो तो उसको छोड देना चाहिये, पवित्र मन करके और हित मित बचन बोलकर सबसे क्षमा मागना चाहिये और आपको सब पर क्षमा कर देना चाहिये ॥२७५॥

आगे महाव्रत धारण करना आवश्यक दिखाते है।

कृत कारित मोदन किये, अघ आलोचन ठान।
छल तज धारो आमरण, सर्व महाव्रत थान ॥२७६॥

अर्थ—जो पूर्व पापकर्म मन, बचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदन से किये हो उनका कपट छोडकर आलोचना सब जनो के सामने अथवा गुरु के पास जा करके महाव्रत स्वीकार करना चाहिये ॥२७६॥

आगे जिनवाणी का अवलबन दिखाते है।

राग द्वेष भय कलुषता, अरति शोक को छोड़।
अपने बल उत्साह से, श्रुत अमृत मन जोड़ ॥२७७॥

अर्थ—राग, द्वेष, भय, कलुषता, विषाद और सर्व प्रकार के हृदय के शोक को छोडकर धैर्यता के साथ अपने बल और पराक्रम को बढाकर शास्त्ररूपी अमृत का अन्त तक पान करते रहना चाहिये ॥२७७॥

आगे बहिरग आहार त्याग की विधि दिखाते है।

क्रम-क्रम से अन्नादि तज, रहे दूध आहार।
दूध त्यागकर गर्म जल, लेवे दिन इतवार ॥२७८॥

लकड़कटा मुनि को निरख, चकित कहाँ यह खाय।
अशन ठाठ लख लांग तज, लही स्वर्ग की काय।२८२।

अर्थ—एक मुनिराज को मार्ग मे जाते देख एक लकडहारे ने विचार किया कि मेरे पास तन ढकने के लिये लँगोटी और उदर भरने के लिये कुल्हाडी भी है और इसके पास कुछ भी नही है फिर यह कैसे नगर मे जावेगा और कैसे उदर भरेगा ? चलकर देखूँ। जब नगर मे मुनिराज पहुँचे तो बडे २ साहूकार उनको वुलाने लगे तब व एक के घर चले गये उसने उनकी पूजा कर षटरस के भोजन करा दिये और लकडहारे को भी उनका सेवक जानकर भोजन करा दिया। भोजन का ऐसा ठाठ देखकर वह फिर उनके पीछे-पीछे चल दिया मुनि वन मे जाकर तीन दिन के लिये ध्यान में लीन हो गये और लकडहारे ने भोजन करते समय ही निश्चय कर लिया था कि जो यह नगा करेगा वही मैं करूँगा इसलिये लँगोटी फेककर उन जैसा आसन बना लिया और प्रात.काल मर कर स्वर्ग मे देव हुआ ॥२८२॥

आगे थोडी भी चर्या से कामना पूर्ण दिखाते है।

श्रावकचर्या पूर्ण यों, इसमें किंचित धार।
स्वयं आय उसकी बने, सर्वारथ सिधि नार॥२८३॥

अर्थ—इस प्रकार दर्शनप्रतिमा से लेकर समाधिमरण तक यह श्रावकचर्या पूर्ण हुई इसमे से जो कोई किंचित (दर्शनप्रतिमा) मात्र भी धारण करता है उसकी सब कामनाये पूर्ण होती है ॥२८३॥

आगे शास्त्र पढने का फल दिखाते है।

जो पढ़कर नित शास्त्र को, जीव विचारे कोय।
धर्म मित्र अरु पाप अरि, वह अति ज्ञाता होय॥२८४॥

* * *

निजरानी अरु भक्ष्य अहारा,
भक्षत खुलत स्वर्ग का द्वारा ।
परनारी अरु खाय अभक्षा,
जिससे होहि नरक प्रत्यक्षा ।।

* * *
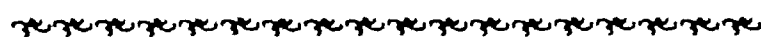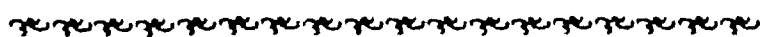
मूर्त भोग सब दोय प्रकारा,
योग्यायोग्य हि लेहु सँभारा ।
इनमें दोय कहीं सर ताजा,
फर्शेन्द्रिय अरु रसना राजा ।।

* * *